नवंबर
2025

धर्म एवं अध्यात्म के तत्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

वर्ष 89 | अंक - 11 | प्रति - ₹ 25 | ₹ 300 वार्षिक

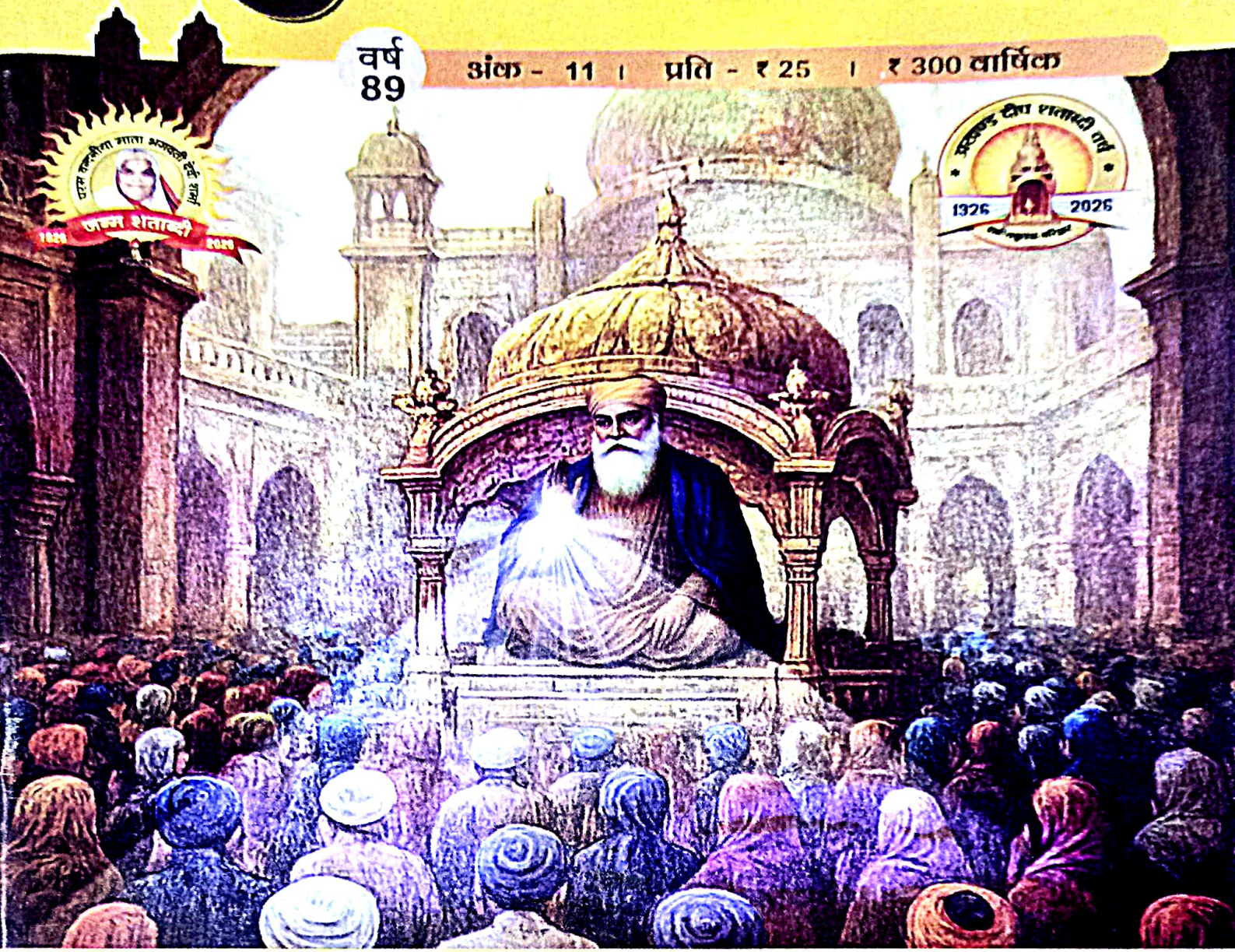

17 ▶ आत्मज्ञान : मनुष्य के उत्थान का पथ
30 ▶ आत्मकल्याण का उत्तम मार्ग
42 ▶ जीवन के नवनिर्माण के क्षण
48 ▶ अविभक्त को विभक्त देखता है राजसी ज्ञान

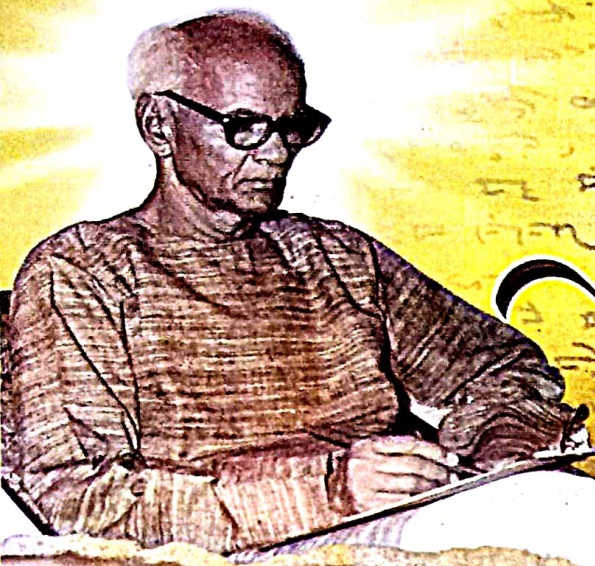

75 वर्ष पूर्व अखण्ड ज्योति

नवंबर-1950

आत्मसंयम और परमार्थ का मार्ग

परमात्मा के सभी पुत्र हैं। सभी उसे समान रूप से प्यारे हैं। पर वह जिन्हें अधिक ईमानदार और विश्वसनीय समझता है, उन्हें अपनी शक्ति का एक भाग इसलिए सौंप देता है कि वे उसके ईश्वरीय उद्देश्यों की पूर्ति में हाथ बँटाएँ। धन, स्वास्थ्य, बुद्धि, चतुरता, शिल्प, योग्यता, मनोबल, नेतृत्व, भाषण, लेखन आदि की शक्तियाँ जिन्हें अधिक मात्रा में दी गई हैं,वे उन्हें दैवी प्रयोजन के लिए दी गई हैं। जो अधिकार साधारण प्रजा को नहीं हैं,वे अधिकार कलेक्टर को देकर राजा कोई पक्षपात नहीं करता,वरन अधिकारी से, योग्य से, अधिक काम लेने की नीति बनाता है। परमेश्वर कभी कुछ थोड़े से आदमियों को अधिक संपन्न बनाकर अपने अन्य लोगों के साथ अन्याय नहीं करता। उसे अपने सभी पुत्र समान रूप से प्यारे हैं। उसने सभी को समान रूप से विकसित होने के अवसर दिए हैं। वह पक्षपात और अन्याय करे तो फिर उसे समदर्शी, न्यायशील और दयालु कैसे कहा जा सकेगा?

(अखण्ड ज्योति, नवंबर 1950,पृष्ठ4)

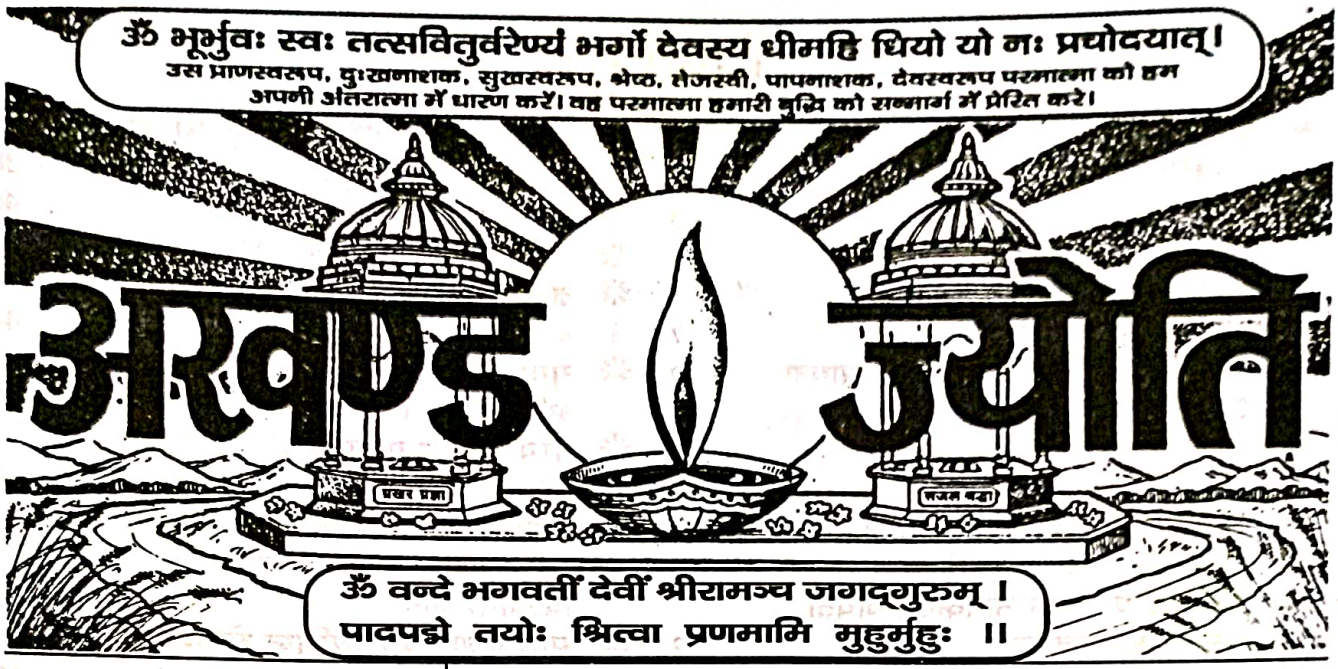

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291, 7534812036
7534812037, 7534812038, 7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर
एस. एम. एस. न करें।
नया ई-मेल :
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	89
अंक	:	11
नवंबर	:	2025
कार्तिक-मार्गशीर्ष	:	2082
प्रकाशन तिथि	:	01.10.2025

वार्षिक चंदा

भारत में सामान्य डाक से	:	300/-
भारत में रजिस्टर्ड डाक से	:	540/-
विदेश में	:	2800/-

आजीवन (बीसवर्षीय)
भारत में सामान्य डाक से : 6000/-
भारत में रजिस्टर्ड डाक से (वार्षिक): +240/-

शांतिकुंज

(क्रमशः)

शांतिकुंज-गंगा की जलतरंगों से सिंचित, हिमालय की छाया से संरक्षित गायत्री तीर्थ। इस पावन भूमि में बीते पुरातन युग में गंगा की जलधारा प्रवाहित हुआ करती थी। इसी के तटस्थल पर इसी दिव्य भूमि में गायत्री महामंत्र के द्रष्टा ब्रह्मर्षि विश्वामित्र ने गायत्री के अनेकों रहस्यमय आध्यात्मिक प्रयोग संपन्न व संपूर्ण किए। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव की हिमालय यात्रा में वहाँ युगों से तपनिरत ऋषियों के साथ स्वयं ब्रह्मर्षि विश्वामित्र ने इस पवित्र साधना भूमि को गायत्री तीर्थ के रूप में प्रतिष्ठित व प्रकाशित करने का संकेत किया था। इस ऋषि संकेत ने दैवी विधान का रूप लिया। वर्तमान में बने मुख्य कार्यालय के आस-पास के बहुत थोड़े-से क्षेत्र में नीचे-ऊपर के कुछ कक्षों के रूप में शांतिकुंज का आरंभिक भवन बना। जहाँ वर्ष 1971 ई० के ज्येष्ठ मास में वंदनीया माताजी अपने साथ अखंड दीप, माता गायत्री की सिद्धशक्ति लेकर यहाँ पर आईं। उस समय उनके साथ बस केवल तीन सहयोगी थे। इन्हीं तीन कार्यकर्त्ताओं के साथ उन्होंने शांतिकुंज का आरंभ किया। उनके आगमन के आरंभिक समय में युगऋषि पूज्य गुरुदेव देवात्मा हिमालय के ध्रुवकेंद्र में तप-साधना के लिए गए थे। परमपूज्य गुरुदेव हिमालय की तप-साधना संपन्न करके शांतिकुंज लौटे। उनके आगमन के बाद शांतिकुंज की दिव्य आध्यात्मिक ऊर्जा में अनेकों नए आयाम जुड़े। यह धरा-धाम का आध्यात्मिक शक्तिकेंद्र और इक्कीसवीं सदी में उज्ज्वल भविष्य की गंगोत्तरी बन गया। ❐

विषय सूची

- आवरण—1 — 1
- आवरण—2 — 2
- शांतिकुंज — 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  धर्मो रक्षति रक्षितः — 5
- जीवन का प्रकाश पथ — 7
- कभी निष्फल नहीं जाती गायत्री-साधना — 9
- ईश्वरमिलन — 12
- सकाम भक्ति भी मूल्यवान है — 13
- ईश्वर से साझेदारी — 15
- आत्मज्ञान : मनुष्य के उत्थान का पथ — 17
- महान संत गोस्वामी तुलसीदास — 18
- **पर्व विशेष—गुरु नानकदेव जयंती**
  एक ओंकार सतनाम — 22
- आत्मदेव की साधना — 25
- स्वधर्म एवं युग-परिवर्तन — 28
- भगत सिंह : क्रांति की अमर पुकार — 29
- आत्मकल्याण का उत्तम मार्ग — 30
- बल की उपासना करें — 32
- ब्रह्मविद्या की महान परिणति — 33
- काल करे सो आज कर, आज करे सो अब — 35
- आत्मप्रज्ञा का जागरण — 38
- पहले स्वयं को बदलें — 40
- जीवन के नवनिर्माण के क्षण — 42
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—199**
  बौद्ध धर्म का प्रचार एवं प्रसार — 44
- **युगगीता—306**
  अविभक्त को विभक्त देखता है राजसी ज्ञान — 48
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  उपासना-साधना-आराधना (पूर्वार्द्ध) — 50
- **विश्वविद्यालय परिसर से—245**
  राष्ट्र-जागरण की नींव रखता विश्वविद्यालय — 56
- **साधना शताब्दी-विशिष्ट लेखमाला**
  उद्योग व्यापार का बदलता स्वरूप — 60
- **अपनों से अपनी बात**
  अपने आप को पहचानें — 63
- मानवता का कल्याण हो गया (कविता) — 66
- आवरण—3 — 67
- आवरण—4 — 68

आवरण पृष्ठ परिचय

"गुरु बिनु घटि न ज्ञानु न उद्धरै, गुरु बिनु समु न तरिआ।" (श्री गुरु ग्रंथ साहिब, अंग 59)

अर्थात—गुरु के बिना न तो ज्ञान प्राप्त होता है, न ही जीवन का उद्धार होता है। गुरु ही वह नौका हैं, जिससे संसार-सागर पार किया जा सकता है।

नवंबर-दिसंबर, 2025 के पर्व-त्योहार

रविवार	02 नवंबर	देवप्रबोधिनी एकादशी/ तुलसी विवाह	सोमवार	01 दिसंबर	मोक्षदा एकादशी/ गीता जयंती
बुधवार	05 नवंबर	गुरु नानक जयंती/ पूर्णिमा/देव दीपावली	गुरुवार	04 दिसंबर	दत्तात्रेय जयंती/ पूर्णिमा
शुक्रवार	14 नवंबर	बाल दिवस	सोमवार	15 दिसंबर	सफला एकादशी
शनिवार	15 नवंबर	उत्पत्ति एकादशी	गुरुवार	25 दिसंबर	क्रिसमस
			बुधवार	31 दिसंबर	पुत्रदा एकादशी

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —संपादक**

विशिष्ट सामयिक चिंतन

धर्मो रक्षति रक्षितः

धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो, मा नो धर्मो हतोऽवधीत्॥

अर्थात जो धर्म का नाश करता है, धर्म उसका नाश करता है और जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म भी उसकी रक्षा करता है। इसलिए धर्म का कभी नाश नहीं करना चाहिए, ताकि नष्ट हुआ धर्म हमारा नाश न कर सके। संस्कृत का यह लोकप्रिय वाक्यांश महाभारत में मिलता है, जो धर्म के महत्त्व को स्पष्ट करता है। यह भारतीय संस्कृति एवं दर्शन की एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा है, जो सिखाती है कि धर्मयुक्त जीवन जीने और नैतिक मूल्यों को बनाए रखने से सुरक्षा और कल्याण प्राप्त होते हैं।

यहाँ धर्म का अर्थ किसी धर्म विशेष या पंथ से नहीं है, बल्कि मानव जीवन को निर्देशित करने वाले सत्य, न्याय और उचित व्यवहार के शाश्वत सिद्धांतों से है। **धर्मो रक्षति रक्षितः**, यह दरसाता है कि जो लोग धर्म का पालन करते हैं, वे सुरक्षित एवं संरक्षित रहते हैं, धर्म स्वयं एक अदृश्य कवच के रूप में उनकी रक्षा करता है। जबकि जो लोग धर्म की अवमानना करते हैं, वे अपने रक्षा कवच को क्षीण करते हैं और समय पर अपने कुकर्मों द्वारा दंडित किए जाते हैं।

धर्म एक व्यापक शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है—वह जो धारण करने योग्य है। इस रूप में धर्म से अभिप्राय कर्त्तव्यपरायणता, नैतिकता, न्याय और सत्यतारूपी सद्गुणों से है एवं यह धार्मिक कर्मकांडों व धार्मिक प्रथा-परंपराओं तक सीमित नहीं है। वस्तुतः धर्म वह धुरी है, जो व्यक्ति एवं समाज के जीवन को संतुलित एवं संगठित रखती है तथा जीवन का हर पक्ष इसमें समाहित है।

व्यक्तिगत स्तर पर यह कर्त्तव्य एवं जिम्मेदारी, नैतिकता एवं सदाचार, सत्य एवं न्याय आदि के रूप में समझा जा सकता है और गहराई में धर्म आत्मज्ञान एवं आध्यात्मिकता की ओर ले जाता है। व्यापक स्तर पर धर्म सामाजिक समरसता एवं सद्भाव के रूप में प्रकट होता है तथा प्रकृति-परिवेश से जुड़कर प्राकृतिक संतुलन का रूप लेता है और सृष्टि से जुड़कर पिंड एवं ब्रह्मांड की लय को तय करता है।

इसी तरह हर राष्ट्र का अपनी प्रकृति के अनुरूप एक विशिष्ट धर्म होता है, जो उसके समग्र विकास एवं उत्थान का मार्ग प्रशस्त करता है। इस तरह धर्म न केवल व्यक्ति के जीवन को सुखी, समृद्ध एवं शांतिमय बनाता है, बल्कि समाज, राष्ट्र एवं पूरे विश्व के भी संतुलन को निर्धारित करता है। अतः हमारा कर्त्तव्य बनता है कि हम धर्म के सही अर्थ को समझें।

साथ ही सत्य एवं ईमानदारी के पथ का अनुसरण करें। अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह करें। अपनी सांस्कृतिक विरासत की सुरक्षा के प्रति सचेष्ट रहें और सामाजिक समरसता एवं सद्भाव में अपना योगदान दें तथा साथ ही प्रकृति का सम्मान करें और पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूक रहें। समाज में नैतिकता एवं मानवीय मूल्यों की स्थापना में जुटे रहें।

वर्तमान संदर्भ में धर्म की प्रासंगिकता को इसी आधार पर समझा जा सकता है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास के चरम पर, संकीर्ण होती मानवीय चिंतन-चेतना एवं संवेदना, बिगड़ती जीवन शैली, नैतिक भ्रष्टता एवं सिद्धांतों की अवमानना

के साथ धर्म की जड़ों पर कुठाराघात हो रहा है। व्यक्तिगत सत्यनिष्ठा डगमगा रही है।

हर कोई आगे बढ़ने के लिए सरल पथ की तलाश में है। सत्य एवं ईमानदारी के राजमार्ग पर चलने का धैर्य एवं अध्यवसाय जैसे चूकता जा रहा है। भौतिकता में उलझा व्यक्ति आध्यात्मिक पथ से च्युत हो रहा है।

आश्चर्य नहीं कि व्यक्ति आज हैरान-परेशान और अशांत है तथा गंभीर मानसिक स्वास्थ्य संकट से गुजर रहा है। इस तरह जहाँ व्यक्तिगत नैतिकता हाशिए पर खड़ी है, वहीं सामाजिक नैतिकता चरमरा रही है।

भ्रष्टाचार की दीमक समाज को अंदर से खोखला किए जा रही है। परिवार संस्था एवं मूल्य टूट रहे हैं। नागरिक कर्त्तव्यों का हनन व्यापक स्तर पर हो रहा है। आएदिन न्याय प्रणाली पर प्रश्नचिह्न लग रहे हैं।

मीडिया सत्य एवं तथ्य से अधिक सनसनी को परोसने में व्यस्त है। इस तरह सामाजिक समरसता एवं सद्भाव का वातावरण दुर्लभ होता जा रहा है। सामुदायिक सहयोग एवं सांप्रदायिक सौहार्द विकट स्थिति में हैं।

पर्यावरण दूषित होता जा रहा है, प्राकृतिक संतुलन बिगड़ने से आएदिन प्राकृतिक आपदा का दंश झेलने के लिए लोग विवश हैं। प्रकृति एवं संस्कृति से कटा विकास एकतरफा होकर असंतुलन की स्थिति पैदा कर रहा है। जलवायु परिवर्तन से लेकर पर्यावरण विपदा इसके स्वाभाविक परिणाम हैं और पृथ्वी का पूरा जैविकतंत्र संकट की स्थिति से गुजर रहा है।

वैश्विक स्तर पर अपनी मनमानी पर उतारू शक्तिशाली राष्ट्र, विश्व शांति, संतुलन एवं सौहार्द के लिए तय मानकों से गंभीर विचलन की स्थिति में दिखते हैं और विश्व नागरिक के रूप में अपनी भूमिका से भटके हुए हैं। धर्म को बहुत संकीर्ण एवं विकृत रूप में स्वीकार कर बैठे कितने सारे राष्ट्र जैसे अधर्म पथ पर आरूढ़ हैं। विश्व में अशांति, आतंक, युद्ध की विभीषिकाएँ इसकी सहज परिणतियाँ हैं, जिनके कारण पूरी मानवता विकट संघर्ष के दौर से गुजरने के लिए विवश है।

इस तरह धर्म के हनन एवं इसके दुष्परिणाम प्रत्यक्ष हैं। अधर्म पथ पर अग्रसर मानव जैसे स्वयं के ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहा है और स्वयं का ही हनन कर रहा है। इसके चलते व्यक्ति हो या परिवार, समाज हो या राष्ट्र, प्रकृति हो या विश्व-व्यवस्था, सभी का अधर्म से उपजे आंतरिक अंतर्विरोधों से चरमराना तय है। मात्र धर्म का

किसी भी व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र का उत्थान उनकी नैतिक शक्ति और ज्ञान के विकास से ही होता है। इसके विपरीत नैतिक पतन ही पराभव तथा पतन का मुख्य कारण है।

संबल एवं रक्षा कवच ही इन्हें बचा सकता है, पार लगा सकता है।

अतः हर स्तर पर धर्म का पालन समय की पुकार है, अधर्म पथ से स्वयं को दूर रखना वास्तविक साहस है, धर्म पथ पर आरूढ़ होने में ही समझदारी है। इसी में सबका हित निहित है और अधर्म, अनैतिकता एवं असत्य का पथ हर दृष्टि से घाटे का सौदा है, जिसके दुष्परिणाम की झलक-झाँकी मिलनी प्रारंभ हो चुकी है और निकट भविष्य में इसके और भी विकराल परिणामों के हम सब साक्षी होने वाले हैं। धर्म का रक्षा कवच ही हमें इन विकट पलों में बचा पाएगा, इस संदर्भ में किसी को कोई भ्रम नहीं होना चाहिए। ❑

जीवन का प्रकाश पथ

जो यह समझ गया कि मेरे भीतर उस सदा रहने वाली शांति का वास है, जिसे मैं बाहर ढूँढ़ा करता हूँ तथा जीवन अपनी नैसर्गिक पूर्णता की अभिव्यक्ति है, वह यह भी समझ जाता है कि जिस लक्ष्य-केंद्र से मनुष्य को अधिसंचालित होना चाहिए, वह और कुछ नहीं, वरन उसका अंतस् ही है। उसी के परिष्कार की प्रक्रिया को साधना कहते हैं एवं इस साधना के द्वारा जीवन अपने पूर्णोत्सर्ग की यात्रा पर चल पड़ता है।

जब ऐसा होता है तो मनुष्य के भीतर की प्रतिभा जाग्रत होकर उसे दैवी दिशानिर्देश प्रदान करती है एवं तब वह हर प्रकार के व्याधि-विकार से मुक्त होकर स्वच्छंद गति को प्राप्त करता है। हमारे भीतर की यह सशक्त प्रणाली ही अपने पथ की कठिनाई के मध्य हमें एकनिष्ठ बनाए रखने में सहायक होती है।

आत्मा वह दिव्य अवलंबन है जो प्रत्यक्ष नेत्रों से देखी नहीं जा सकती, न ही उसका कुछ विशेष स्वरूप है। वह तो जाग्रत अंत:करण द्वारा ही समझी जाती है एवं उसका क्रियाकलाप इस जीवन की सुख-शांति एवं पूर्ण उत्कर्ष के रूप में ही देखा जाता है।

इसके लिए हमें स्वयं को सुगठित करना आना चाहिए। हमें यह बोध होना चाहिए कि जिस शक्ति-स्रोत से हम प्रेरित हैं वह और कुछ नहीं, वरन हमारी दिव्य संभावना का नाम है। जिस दिन मनुष्य यह सीख जाएगा कि उसका अस्तित्व किसी महान अवलंबन पर आधारित है तथा वह व्यर्थ के विषयों में इसलिए उलझता है; क्योंकि उसकी आत्मा पूर्णरूप से जाग्रत नहीं तभी एक क्रांति घटित होती है और वह यह कि उसके भीतर की दिव्यता एवं संपूर्ण गुण-कौशल मुखरित हो उठते हैं। तब वह असहाय प्राणी न रहकर एक देवात्मा में परिणत हो जाता है। यही उसकी नियति है और जो कुछ भी उसे इससे वंचित करता है वह त्याज्य है।

उसका जीवन किसी आदर्श को समर्पित नहीं दिखता एवं इसी में सभी समस्याओं का मूल निहित है। जब तक हमें पूर्ण उत्कर्ष का पथ नहीं दिखाई देता, हम व्यक्तिगत मान्यताओं एवं तदनुरूप क्रिया-व्यवहार में ही जकड़े रहते हैं तब तक मनुष्य की आत्मा सक्रिय होकर अपने दिव्य क्रियाकलाप की स्थिति में नहीं आ पाती है।

वह तभी अपने संपूर्ण वैभव की प्राप्ति करेगी, जब उसे प्रकाश के उज्ज्वल पथ पर बढ़ने का एकमात्र साधन मिल जाए। वह है चित्त का निर्विकार होना; क्योंकि इसी के बाद मनुष्य अपनी गुण-प्रतिभा को महानता के राजमार्ग पर लगाता है तथा उसका संपूर्ण जीवन किसी आदर्श के निमित्त समर्पित होने को तैयार हो जाता है।

ऐसा मनुष्य सच में धन्य है, जिसने अपनी आत्मा को पूर्ण परिष्कृत करना सीख लिया हो; क्योंकि इसके बाद ही उसे मोह-आसक्ति एवं मतिभ्रम से बचने में सहायता मिलती है। उसका अंत:करण सदैव दिव्य भावना से ओत-प्रोत रहता है तथा उसका प्रत्येक क्रियाकलाप विषयों से इतर आत्मा का संगी होता है। वह अपने आप में उस प्रकाश को

धारण करने में समर्थ होता है, जिसे कि योगियों ने पूजा है, जो किसी भी गुणवान हृदय की पहचान है तथा जिसके द्वारा वास्तव में मनुष्यता का कल्याण किया जा सकता है।

हमें उस आत्मा पर निर्भर रहना चाहिए, जो कि महान उत्कर्ष की प्रार्थी है। उसके समतुल्य कुछ भी नहीं, जो उसे समझ गया वह कभी भी भीतरी संपदा को बाह्यविषयों से हस्तांतरित नहीं कर सकता है। यही उसकी प्रतिभा है। इसके बाद तो संसार मात्र क्रीड़ाभूमि या कहें अपने अंतस्थ में विराजित सत्ता का प्रकटीकरण भर रह जाता है।

इसे ही जीवन का प्रकाश पथ कहेंगे। जो मनुष्य इसके योग्य स्वयं को बना लेते हैं, वे धन्य हैं; क्योंकि इससे बढ़कर कोई उपहार नहीं। जिसकी आत्मा जाग्रत नहीं है वह इस संसार के झंझावातों के मध्य कभी भी वास्तविक उत्थान को प्राप्त नहीं हो पाता है। इसके लिए तो वह परिपूर्ण निष्ठा चाहिए जिसके बाद मनुष्य का अंतःकरण स्वयमेव अपने आदर्श प्रयोजन की पूर्ति कर सके।

मनुष्य की आत्मा चाहती है कि वह उसे विकास के पथ पर लगाए, परंतु वह तो उसे अंधकार की बेड़ियों में ही जकड़े रखना चाहता है। उसकी इस दुर्दशा का अंत तभी होगा, जब उसे अपनी आत्मसंपदा का भान हो सके तथा उसका जीवन सदा एकरस अपनी पावन गति को प्राप्त करे। इसके लिए उसे चाहिए कि हर प्रकार के व्याधि-विकार से मुक्त हो सर्वतोभावेन ईश्वर की सेवा में जा लगे, जो कि आत्मा की एकनिष्ठ सत्ता का पर्याय है। इसी में प्रेम का निवास है एवं इसी के द्वारा वास्तविक धर्म की प्राप्ति संभव है। ❑

हिमालय की तराई में दो संन्यासी साथ-साथ रहते थे। उनमें एक वृद्ध और दूसरा नौजवान था। एक बार वे कई दिनों की तीर्थयात्रा के पश्चात जब अपने ठिकाने पर पहुँचे तो उन्होंने देखा कि हवा-आँधी ने उनकी कुटिया को तबाह कर दिया है।

यह देख युवा संन्यासी बड़बड़ाने लगा कि जो छल-फरेब करते हैं, उनके मकान सुरक्षित हैं और हम जो दिन-रात प्रभु स्मरण करते हैं, हमारी कुटिया तहस-नहस हो गई। वृद्ध संन्यासी बोला—"दुःखी मत हो। इसमें भी कुछ अच्छा ही होगा।" पर युवक संन्यासी वृद्ध की बात से सहमत नहीं हुआ। वह दुःखी होकर रात भर जागता रहा; जबकि वृद्ध सुबह सोकर उठा तो बोला—"धन्यवाद ईश्वर! आज खुले आसमान के नीचे बहुत अच्छी नींद आई, काश यह छप्पर पहले उड़ गया होता।"

इस पर युवा संन्यासी बोला—"एक तो कुटिया नहीं रही, ऊपर से आप ईश्वर को धन्यवाद दे रहे हैं।" वृद्ध बोला—"तुम हताश हो गए, इसलिए रात भर जागते रहे और दुःखी रहे। मैं प्रसन्न था, इसलिए चैन की नींद सो गया।" इनसान को हर परिस्थिति में प्रसन्न रहना चाहिए।

कभी निष्फल नहीं जाती गायत्री-साधना

गायत्री-साधना कभी भी निष्फल नहीं जाती। गायत्री की साधना निष्काम भाव से की जाए अथवा सकाम भाव से, उसका फल मिलता अवश्य है। जैसे ब्रह्मास्त्र हर हाल में अपना लक्ष्य भेदन करके रहता है, वैसे ही गायत्री-साधना भी साधक के लिए भौतिक व आध्यात्मिक उत्थान का लक्ष्य भेदन करके रहती है। इसमें संशय व संदेह की कोई गुंजाइश ही नहीं है। हाँ! कभी-कभी किसी विशेष कारण से फल प्राप्ति में देर हो सकती है, पर फल प्राप्ति होगी अवश्य। यह सर्वथा शास्त्रसम्मत व प्रमाणित सत्य है। इसलिए साधक को गायत्री-साधना में पूर्ण श्रद्धा-विश्वास, संयम व धैर्य के साथ निरत रहना चाहिए।

कई बार ऐसा होता है कि पूर्ण मनोयोग से गायत्री-साधना में निरत साधक किसी कामना विशेष की पूर्ति नहीं होने पर अथवा फल प्राप्ति में देरी होने पर साधना से उदासीन होने लगता है। कामना पूर्ति नहीं होने पर, शीघ्र फल प्राप्त नहीं होने पर अथवा आत्मसाक्षात्कार की दृष्टि से भी साधना में शीघ्र सफलता नहीं मिलने पर साधक खिन्न, हताश, निराश हो साधना से विचलित हो जाता है और साधना छोड़ देता है।

साधक के लिए फल प्राप्ति की दृष्टि से साधना के विधि-विधान ही नहीं, बल्कि साधना के विज्ञान को समझना भी आवश्यक है कि पूर्ण मनोयोग व विधि-विधान के साथ गायत्री-साधना करते रहने पर भी यदि किसी कामना विशेष की पूर्ति अथवा आत्मसाक्षात्कार की अनुभूति में विलंब हो रहा है तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि आपके द्वारा वर्षों तक की गई साधना का श्रम निरर्थक अथवा निष्फल चला गया और इसका अर्थ यह भी नहीं है कि साधना-प्रणाली ही संदिग्ध है।

इस दिशा में आपके द्वारा किए गए प्रयत्न का एक क्षण भी निरर्थक नहीं जाता। यहाँ साधकों को यह समझना है कि कई बार मनुष्य ऐसी कामना भी करता है, जो उसे अपने लिए आवश्यक व लाभप्रद प्रतीत होती है, पर ईश्वरीय दृष्टि में वह कामना उसके लिए अनावश्यक व हानिकारक होती है। ऐसी कामनाओं को प्रभु पूरा नहीं करते। वे हमारी उन्हीं कामनाओं को पूरा करते हैं, जो हमारे लिए भौतिक व आध्यात्मिक दृष्टि से सचमुच ही लाभप्रद, उपयोगी, आवश्यक व महत्त्वपूर्ण हों।

एक बालक अपनी माता व पिता से अनेकों चीजें माँगता रहता है, पर वे उसकी उन्हीं इच्छाओं को पूरा करते हैं जो उसके लिए लाभप्रद हैं। माता-पिता यह जानते हैं कि उसे क्या दिया जाना चाहिए, और क्या नहीं। बालक के रोने-चिल्लाने पर भी वे उसे वे चीजें प्रदान नहीं करते, जो उसके लिए अनावश्यक अथवा हानिकारक हैं।

वे उसे उन चीजों से वंचित ही रखते हैं, जो उसके लिए उपयोगी नहीं। उसी प्रकार एक कुशल चिकित्सक को यह पता होता है कि रोगी के आहार-विहार में उसे कितनी छूट देनी है अथवा नहीं देनी है। रोगी के कहने अथवा रोने-चिल्लाने पर भी वे उसे ऐसी चीजें खाने की छूट नहीं दे सकते, जिससे उसका स्वास्थ्य खराब होने का खतरा हो और उसके शीघ्र स्वस्थ होने में बाधा पड़े।

आदिशक्ति माता गायत्री भी हमारी उन्हीं कामनाओं को पूरा करती हैं, जो हमारे आत्मकल्याण, आत्मसाक्षात्कार अथवा भगवत्प्राप्ति में बाधक न हों, वरन सहायक हों। गायत्रीसाधकों में बहुत से लोग बालक बुद्धि के हो सकते हैं जिन्हें अपने लिए उनकी हर कामनाएँ लाभप्रद, आवश्यक व उचित प्रतीत होती हों और इन्हीं बाल बुद्धि की याचना के कारण उन्हें साधना में निराशा व असफलता मिली हों, पर यह सत्य है कि ईश्वर, ब्रह्म अथवा माँ गायत्री अपने पुत्रों को, साधकों को उनकी पात्रता, आवश्यकता व उपयोगिता के अनुसार देती हैं, उनकी मनोकामनाएँ पूरी करती हैं।

वहीं साधना के विज्ञान का दूसरा पक्ष यह भी है कि कई बार पूर्ण मनोयोग के साथ साधना करते रहने पर भी हमें मनवांछित फल प्राप्त नहीं होते अथवा फल प्राप्ति में बहुत देरी होती है। इसका कारण यह होता है कि हमारे जन्म-जन्मांतरों के संचित कर्म परिपक्व होकर प्रारब्ध बन चुके होते हैं और इतने प्रबल होते हैं कि उन्हें तुरंत पूरी तरह मिटाना संभव नहीं होता और साधकों को उन प्रबल प्रारब्धों के फल को दुःख, कष्ट, क्लेश व यातनाओं के रूप में भोगना पड़ता है।

मनवांछित फल की प्राप्ति अथवा सफलता में देरी होती है अथवा बाधाएँ आती हैं, पर उन यातनाओं, कष्टों के बीच भी साधक यदि कठोरतापूर्वक अपनी साधना में निरत रहता है और साधना का त्याग नहीं करता तब उसकी गायत्री-साधना के प्रभाव से उसके प्रबल प्रारब्ध भी पूर्णतः मिट जाते हैं, उसके प्रारब्ध कर्म ही नहीं, बल्कि गायत्री-साधना की प्रचंड अग्नि में उसके संचित, क्रियमाण व प्रारब्ध—तीनों प्रकार के कर्मों से उत्पन्न संस्कार भस्मीभूत हो जाते हैं। वर्तमान में उसके द्वारा किए गए कर्म भी बिना कोई संस्कार उत्पन्न किए अकर्म होने लगते हैं और इस प्रकार उसके पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ, अच्छे-बुरे सभी प्रकार के कर्मों के संस्कार मिट जाने से वह सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त हो जाता है।

वह जन्म-मृत्यु के बंधन से भी मुक्त होकर, आत्म-साक्षात्कार, ईश्वर-साक्षात्कार की अनुभूति करता है और वह जीवन में सदा आनंदित व प्रफुल्लित रहता है, पर प्रबल प्रारब्ध के कारण फल प्राप्ति की प्रक्रिया में देरी होती है और एक से अधिक जन्म भी लग जाते हैं; क्योंकि प्रबल प्रारब्ध के मिटने व सभी प्रकार के कर्मों के संस्कारों के क्षय होने में समय तो लगता ही है।

इन संस्कारों का क्षय रातोंरात नहीं हो जाता। छोटे-छोटे कर्म-प्रारब्ध तो साधना के प्रभाव से शीघ्र मिट जाते हैं और शीघ्र सफलता मिलती है, पर बड़े प्रारब्ध हों तो उनके मिटने में समय लगता है और इसलिए सफलता में देरी होती है। हमें यह समझना भी आवश्यक है कि हमारे जीवन में जो कष्ट-क्लेश आते हैं, वे दरअसल जन्म-जन्मांतरों के हमारे ही संचित कर्म हैं, जो प्रारब्ध भोग बनकर हमारे जीवन में प्रकट होते हैं।

कई बार ईश्वर हमें उन कर्मों का भोग करा कर, हमें कर्म संस्कारों से मुक्त कराके हमारी चित्त शुद्धि की प्रक्रिया को तीव्र कर हमारे लिए आत्मसाक्षात्कार के मार्ग को प्रशस्त करते हैं। माता अपने बच्चे को खिलौने व मिठाई देकर दुलार भी करती है और बीमार होने पर अस्पताल में ऑपरेशन की कठोर पीड़ा दिलाने ले जाती है एवं कड़ुई दवा पिलाती है।

यदि कोई बालक माता के इस व्यवहार को समझ नहीं पाए और इसे वह माता का पक्षपात,

अन्याय व निर्दयता मान बैठे तो वह भूल रहा है कि माता तो सिर्फ यही चाहती है कि उसका बालक शीघ्र स्वस्थ होकर सुखपूर्वक जीवन जी सके। चिकित्सक भी यही सोचकर रोगी का ऑपरेशन करता है, उसे कड़ुई दवाइयाँ पिलाता है, जिससे वह शीघ्र स्वस्थ हो सके।

ईश्वर भी हमें प्रारब्ध कर्मों का भोग करा कर, उन्हें मिटाकर निर्मल व निर्बंध करते हैं और हमारे लिए आत्मप्रगति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। ईश्वर की दृष्टि व्यापक है। दुःख, दारिद्र्य, रोग, हानि, क्लेश, अपमान, शोक, वियोग देकर भी वे हमारे ऊपर महती कृपा का प्रदर्शन करते हैं। वैसे ही जैसे स्वस्थ करने हेतु, रोगमुक्त करने हेतु रोगी को चिकित्सकीय पीड़ा से गुजारकर चिकित्सक उस रोगी पर कृपा ही करता है।

हमारी असफलताएँ, हानियाँ तथा यातनाएँ भी कई बार हमारे लिए लाभप्रद साबित होती हैं, जो हमें बाद में समझ में आती हैं। गायत्री के सिद्ध साधक, गायत्री महाविद्या के मर्मज्ञ व ब्रह्मरूपा गायत्री का साक्षात्कार करने वाले युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव का गायत्रीसाधकों के लिए यह स्पष्ट निर्देश व आश्वासन है कि गायत्रीसाधकों को अपना धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए।

उनके अनुसार उन्हें निराश नहीं होना चाहिए; क्योंकि जो ब्रह्मरूपा गायत्री माता की गोद में स्वयं को डालकर निश्चिंत हो चुका है, वह कभी भी घाटे में नहीं रहता।

उसकी गायत्री-साधना कभी निष्फल नहीं जाती और निष्काम भाव से साधना करने वाला भी सकाम साधना वालों से कम लाभ में नहीं रहता। माता से यह छिपा नहीं रहता कि उसके किस पुत्र को किस वस्तु की आवश्यकता है। जो आवश्यकता उसकी दृष्टि में उचित है, उससे वह अपने किसी पुत्र को वंचित नहीं रहने देती।

अच्छा हो कि हम निष्काम साधना करें और धैर्यपूर्वक देखते रहें कि हमारे जीवन के प्रत्येक क्षण में उस आद्यशक्ति गायत्री माता ने कैसे हमें आश्रय दिया है, वह अपने ऊपर एक दैवी छत्रछाया का अस्तित्व प्रतिक्षण अनुभव करेगा और अपनी उचित आवश्यकताओं से कभी वंचित नहीं रहेगा। यह एक मान्य तथ्य है कि कभी भी किसी की गायत्री-साधना निष्फल नहीं जाती। ❑

वड़ोदरा के शेखड़ी गाँव में संत रवि साहेब एक आश्रम में रहते थे। वे ग्रामीण बच्चों को पढ़ाते, दुःखियों की सेवा करते और ईश्वरभक्ति किया करते। दूर-दूर से लोग उनका सत्संग करने आते। उस क्षेत्र में कबाजी डाकू का आतंक था। एक दिन डाकू को रवि साहेब के दर्शनों की लालसा जगी। वह साधारण वेश में आश्रम में पहुँचा और सत्संग सुनकर आह्लादित हो उठा। रवि साहेब की दुःखियों के प्रति सेवा-भावना देखकर उसमें उनके प्रति श्रद्धा और बढ़ गई। उसने निर्णय लिया कि वह संत जी का सत्संग किया करेगा।

एक दिन वह संत के लिए मिठाई और धन लेकर आश्रम पहुँचा। संत ने पूछा—"तू कौन है?" कबाजी ने कहा—"मैं डाकू कबाजी हूँ।" संत बोले—"कबाजी! तू निर्दोषों की हत्या करके धन एकत्र करता है। तेरी पापपूर्ण कमाई के उपयोग से हमारी बुद्धि भ्रष्ट हो जाएगी, इसलिए हम इसका स्पर्श भी नहीं करेंगे।" संत के शब्दों को सुनकर कबाजी ने उनके सामने डकैती छोड़ देने की प्रतिज्ञा की। संत ने उसे हृदय से लगा लिया।

ईश्वरमिलन

सृष्टि के आरंभ से यह प्रश्न रहा है कि क्या ईश्वर प्राप्य है या वह मात्र कपोल कल्पना ही है? उसके बारे में जितनी धारणाएँ हैं, वे सभी किसी अज्ञात सत्य की ओर इंगित करती हैं। हमें यह समझना होगा कि इंद्रिय-विषय, मन का व्यापार कभी हमें उस ईश्वर तक नहीं पहुँचा सकते। जो तत्त्व-बुद्धि से परे हो, भला वह मानसिक तिकड़म में कैसे फँसेगा? यहीं पर सारे मत धराशाही दिखाई पड़ते हैं तथा जिसने उच्चतर बोध को विकसित कर दिया तथा आसक्ति-बंधन त्याग डाले, वही इस भूमिका का अधिकारी बनता है।

ईश्वरमिलन एक दैवी सौभाग्य है। इसके लिए हमें पात्र होना पड़ता है। वह अमृत है, उसकी किसी से तुलना संभव नहीं। फिर भी यदि भ्रम में रहा जाए तथा संसार के माया-मोह को पकड़कर जीवन गुजारा जाए तो यह महान त्रासदी उत्पन्न करेगा। ऐसे बनें कि दैवी सत्ता हम पर स्वतः अनुग्रह कर सके। इससे बढ़कर कुछ नहीं हो सकता कि मनुष्य परम तेजस्विता को प्राप्त करे।

वर्तमान में तो वह संसार के राग-रंग खोजते हुए इसी दुविधा में तल्लीन है, परंतु ईश्वरमिलन के बाद कोई भी भाव अंतरा की पवित्रता, सरसता एवं महानता को छिपा नहीं पाता। तब उसे यह सतत अनुभव होता है कि वह अदृश्य सत्ता कठपुतली के सदृश उसे नचा रही है। वह अनुभव कर पाता है कि जिस कार्य हेतु उसने आवाहन किया है, वह पूरा होगा ही। यही दैवी अभियान है।

हम सबको उसकी पुकार सुननी चाहिए। जब वह दिव्यता ही भीतर से संचालित करने लगेगी तभी आत्मा का प्रकाश विस्तृत होकर व्यक्तित्व की क्षुद्रता मिटाएगा। इसी में शांति है तथा उज्ज्वल भविष्य के स्वप्न की पूर्ति भी।

यह बात निर्विवाद रूप से मान ली जाए कि जिसे ग्रंथों, संतों की वाणियों एवं उपासना-प्रकरणों में पाते हैं, उसमें समा जाना हमारा अधिकार है। दूरी हानि का कारण बनेगी तथा मल-विक्षेप बढ़ेंगे। सजग होते हुए अपनी दिशा तय हो जाती है, यही उत्कर्ष का आधार है। ❑

गायत्री सद्बुद्धि की देवी है। इसकी उपासना करने से मनुष्य में दैवी संपदाओं की वृद्धि और आसुरी तत्त्वों का नाश होने लगता है। बुरे विचारों का शमन और अच्छे विचारों का उदय करना इसका मुख्य कार्य है। जो व्यक्ति अपने मन-मंदिर में गायत्री माता की स्थापना कर लेता है, वह पतित मार्ग की ओर ले जाने वाले साधनों से घृणा करने लगता है और नैतिकता, श्रेष्ठता, सदाचार व संयम की ओर बढ़ता जाता है। इसलिए जिनको मन से अश्लीलता के विष को धोना हो, उनको परम पुनीत और श्रेष्ठ गायत्री-साधना में लग जाना चाहिए।

—परमपूज्य गुरुदेव

सकाम भक्ति भी मूल्यवान है

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने भक्तों के तीन प्रकार बताए हैं—सकाम भक्ति करने वाला, निष्काम परंतु एकांगी भक्ति करने वाला और ज्ञानी अर्थात संपूर्ण भक्ति करने वाला। निष्काम परंतु एकांगी भक्ति करने वालों के भी तीन प्रकार हैं—आर्त्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी। भक्ति वृक्ष की ये शाखा-प्रशाखाएँ हैं। सकाम भक्ति करने वाले का क्या अर्थ है? कुछ इच्छाएँ रखकर भगवान के पास जाने वाला। यह भक्ति भी निकृष्ट प्रकार की नहीं है।

बहुत से लोग सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र में इसीलिए जाते हैं, ताकि उन्हें मान-सम्मान मिले। हमें उन्हें मान देना चाहिए। ऐसा मान मिलते रहने से वे आगे सार्वजनिक सेवा में सुस्थिर हो जाएँगे। फिर उसी काम में उन्हें आनंद आने लगेगा। मान पाने की इच्छा का आखिर अर्थ क्या है? यही कि उस सम्मान से हमें विश्वास हो जाता है कि जो काम हम करते हैं, वह उत्तम है। सेवा अच्छी है या बुरी, यह जानने के लिए जिसके पास कोई आंतरिक साधन नहीं है, वह इस बाह्य साधन का सहारा लेता है।

जब माँ बच्चे को शाबाशी देती है तो वह चाहता है कि माँ का और भी काम करूँ। यही बात सकाम भक्त की है। सकाम भक्त सीधा परमेश्वर के पास जाकर कहता है—दो। परमेश्वर से माँगना कोई मामूली बात नहीं। वह भी मूल्यवान है। एक कथा आती है। ज्ञानदेव ने नामदेव से पूछा—"तीर्थयात्रा के लिए चलोगे?" तो नामदेव ने कहा—"यात्रा किसलिए?" ज्ञानदेव ने जवाब दिया—"साधु-संतों का समागम होगा।" नामदेव ने कहा—"भगवान से पूछकर आता हूँ।"

नामदेव मंदिर में जाकर भगवान के सामने खड़े हो गए। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। रोते-रोते उन्होंने पूछा—"प्रभु क्या मैं जाऊँ?" ज्ञानदेव पास ही थे।

इस पुकार को क्या हम गलत कहेंगे? परमेश्वर के पास जाकर रोने वाला भक्त सकाम भले ही हो पर असाधारण है। अब यह उसका अज्ञान समझना चाहिए कि जो वस्तु सचमुच माँगने योग्य है, उसे वह नहीं माँगता, परंतु इसलिए उसकी सकाम भक्ति त्याज्य नहीं मानी जा सकती।

गीता में भगवान कहते हैं—"मेरा भक्त सकाम होगा, तो भी उसकी भक्ति दृढ़ करूँगा। उसके मन में उलझन नहीं होने दूँगा। यदि वह मुझसे सच्चे हृदय से प्रार्थना करेगा कि मेरा रोग दूर कर दो, तो मैं उसके आरोग्य की भावना को पुष्ट करूँगा। किसी भी निमित्त (कारण) से वह मेरे पास आएगा, तो मैं उसकी पीठ पर हाथ फेरकर उसको प्रेम ही करूँगा।" ध्रुव पिता की गोद में नहीं बैठ पाए तो उसकी माँ ने कहा—"ईश्वर से स्थान माँग।" वे उपासना में जुट गए।

भगवान ने उन्हें अचल स्थान दे दिया। मन निष्काम न हो, तो भी क्या? महत्त्व की बात तो यह है कि मनुष्य माँगता किससे है? दुनिया के सामने हाथ न पसारकर ईश्वर से माँगने की वृत्ति भी बड़े महत्त्व की है।

निमित्त कुछ भी हो, एक बार हम भक्ति मंदिर में जाएँ तो सही। पहले यदि कामना लेकर भी जाएँगे तो भी आगे चलकर निष्काम ही हो जाएँगे। भक्ति मंदिर में एक बार प्रवेश कर लेने से वहाँ की सामर्थ्य स्वतः मालूम हो जाएगी।

स्वर्ग जाते हुए धर्मराज के साथ अंत में एक कुत्ता ही रह गया। भीम, अर्जुन सब रास्ते में छूट गए। स्वर्ग द्वार के पास धर्मराज से कहा गया—"तुम आ सकते हो, परंतु कुत्ते की मनाही है।"

धर्मराज ने कहा—"अगर मेरा कुत्ता नहीं आ सकता तो मैं भी नहीं आऊँगा। अनन्य सेवा करने वाला कुत्ता भी मैं-मैं करने वाले इनसानों से तो श्रेष्ठ ही है।" वह कुत्ता भीम-अर्जुन से भी श्रेष्ठ साबित हुआ। भगवान का स्मरण करने वाला हर जीव विश्ववंद्य हो जाता है।

एक आदमी ने बड़े पुलकित हृदय से नदी में एक रुपये का सिक्का डाल दिया। पास में एक आलोचक बैठे थे। कहने लगे—"पहले ही देश कंगाल है और ये लोग व्यर्थ पैसा फेंकते हैं।" तभी किसी ने कहा—"यदि दूसरे सत्कार्य के लिए उसने पैसे दिए होते तो वह दान और भी अच्छा होता, किंतु उस मनुष्य ने तो इस भावना से प्रेरित होकर यह त्याग किया है कि इस नदी के रूप में ईश्वर की करुणा ही बह रही है।" इस भावना के लिए हमारे अर्थशास्त्र में कोई स्थान है क्या?

देश की एक नदी को देखकर उसका अंत:करण द्रवित हो उठा। देश की महान नदी को देखकर यदि यह भावना मन में जागती है तो अपनी सारी संपत्ति अर्पण कर दूँ तो यह कितनी बड़ी देशभक्ति है। हम कहेंगे कि नदी का और परमेश्वर का क्या संबंध है? नदी है, ऑक्सीजन और हाइड्रोजन है। सूर्य है, गैस की बत्ती का एक बड़ा-सा नमूना। उसे नमस्कार क्यों करे? पर सत्य यह है कि सूर्य और नदी में भी यदि परमेश्वर का अनुभव न होगा, तो फिर कहाँ होगा?

अँगरेज कवि वड्र्सवर्थ बड़े दु:ख से कहता था—पहले जब हम इंद्रधनुष देखते थे तो नाच उठते थे। हृदय हिलोरें मारने लगता था, पर आज हम क्यों नहीं नाच उठते। पहले की जीवन-माधुरी खोकर कहीं हम पत्थर तो नहीं बन गए। आशय है कि सकाम भक्ति अथवा मनुष्य की भावना का भी बड़ा महत्त्व है। इस भावना से महान सामर्थ्य पैदा होती है।

भक्ति एक अपूर्व साधना है। सकाम भक्ति ही बाद में क्रमश: निष्काम भक्ति और फिर पूर्ण भक्ति की ओर ले जाएगी। भावना की पवित्रता हृदय के द्वार को खोलती है।

जब भाव पवित्र हो जाता है तो हृदय मंदिर में प्रतिष्ठित आत्मा का अनुभव होने लगता है और यह दिव्य अनुभव जब हो जाता है तो मन की सारी इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं। केवल आनंद ही शेष रह जाता है और सर्वस्व को आप्लावित कर देता है। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

ईश्वर से साझेदारी

जिसने ईश्वर को अपना अंतरंग सहयोगी बना दिया, जो उसके दिशाकदमों पर आगे बढ़ना सीख गया, जिसे यह प्रेरणा प्राप्त हो गई कि इस जीवन की एकमात्र सच्चाई एवं गौरव-गरिमा ईश्वरनिर्दिष्ट जीवनयापन में है तथा यहाँ कुछ भी ऐसा नहीं, जो ईश्वर की अनुकंपा एवं स्नेह-दृष्टि से युक्त न हो, वही जीवन का वास्तविक लाभ प्राप्त कर सकता है।

उसे ही अंतरात्मा की दिव्य पुकार एवं उस पर चल सकने का साहस प्राप्त होता है। उसका ही जीवन शानदार एवं अभिनंदनीय बनता है और वही सत्य के मार्ग पर आरूढ़ होता है। जिसने यह समझ लिया कि अंतरात्मा एक दिव्य तत्त्व है, जो हम सब में सक्रिय हो अभूतपूर्व मेधा का प्रदर्शन करती है—वही इस पथ पर आरूढ़ हो पाता है।

उसी के बल पर मनुष्य अपनी आत्मजाग्रति द्वारा हर प्रकार से उन्नत एवं श्रेष्ठ होता जाता है। उसी की क्रियाप्रणाली में ईश्वर मुखरित होता है। उसका जीवन सदा उच्च, उमंगयुक्त एवं हृदय की प्रेरणा से संचालित दिखाई पड़ता है। यही ईश्वर का चमत्कार है। हम उसे तभी समझ पाएँगे, जब पवित्रता हमारे अंतःकरण में समायी हो।

हम अपने आप को ईश्वर की विराट सत्ता के अनुरूप सुगठित करें एवं हमारा जीवन सच में उस प्रकाश को उत्सर्जित कर सके, जिसके लिए हमने जन्म लिया है। यही ईश्वर की पूजा है। आप मत मानिए विधि-विधानों एवं अनेकानेक क्रियाकलापों को, परंतु ईश्वर पर विश्वास तो कीजिए। उसे अपने अंतःकरण में धारण कर आगे बढ़ने की ठानिए तो सही। हमारा जीवन धन्य हो जाएगा यदि हम ईश्वर के वास्तविक अर्थ को समझ पाएँ।

हमारे लिए ईश्वर टोने-टोटके का विषय न बन पाए, मत-मतांतरों एवं जड़ताग्रस्त दृष्टिकोण के तले कभी ईश्वर विस्मृत न हो पाए। ईश्वर एक महान सत्ता है। उसे समझना है तो पहले अपना अंतःकरण स्वच्छ करना पड़ेगा। वहाँ जमी हुई विषय-वासनाओं एवं अंधकार की प्रहरी मूढ़ प्रवृत्तियों को समाप्त करना पड़ेगा।

ईश्वर आपके जीवन का अभिन्न अंग बन सके इसके लिए स्वयं को जागरूकतापूर्वक देखें। जब यह समझ आ जाए कि हम किसी महान शक्ति-स्रोत से जुड़े हैं एवं उसी की क्रियाप्रणाली को अंगीकार कर हमें आगे बढ़ना चाहिए तथा वही हमारा भाग्यविधाता है—तब मनुष्य के पास अपनी प्रतिभा के उत्सर्ग के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं रह जाता।

हम अपने आप में पूर्ण रूप से जागरूक हो पाते हैं तथा अपनी सत्ता को ईश्वर को सौंप उसे ही अपना सर्वस्व स्वीकारते हैं। इस प्रक्रिया में हमारा अहं विगलित होता है, चेतना तदाकार होती है तथा गुण-धर्म ईश्वरीय न्याय-आकांक्षा के अनुरूप बनने लगते हैं। जिसके पास ईश्वर है, वह कभी भी स्वयं को दुविधाग्रस्त या असहाय नहीं मान सकता है, उसका अंतःकरण सदैव दिव्य भावना से ओत-प्रोत रहता है एवं उसके सभी क्रियाकलाप महानता के पक्षधर होते हैं।

ऐसा संबंध ही हमें ईश्वर से बनाना चाहिए, उसे अपनी गतिविधियों के मूल में स्थापित कर

सदैव निश्चिंत रहना चाहिए। यदि ईश्वर हमारे साथ हैं तो कौन-सी कठिनाई हमें मार्ग से विचलित करने में समर्थ हो सकती है।

ईश्वर निराकार है तो उसकी पूजा जिन भी माध्यमों से की जाए, परंतु हृदय उसी की अभिव्यंजना से गतिशील एवं उसी के लिए ओत-प्रोत होना चाहिए। जब ऐसा हो जाएगा तो मनुष्य में विद्यमान देवत्व जाग उठेगा एवं तब उसे इस संसार की परिस्थितियों को सुलझाने में देर नहीं लगेगी।

ईश्वर महान चेतना का स्वरूप है। वह ईश्वर हमें कहाँ मिलेगा? धर्म-ग्रंथों में, अनेकों पूजा-पद्धतियों में या किसी अन्य मत-क्रियाकलाप में। ईश्वर का स्थान हमारा हृदय है, उसे अन्यत्र ढूँढ़ना व्यर्थ है, वहीं से ईश्वरीय प्रेरणा गति संचालित होती है एवं मानवीय स्वरूप अपने दिव्य रूपांतरण हेतु तत्पर दिखाई देता है। मनुष्य को अपनी क्षुद्रता को मिटा महानता का अवलंबन ग्रहण करने के लिए ही ईश्वर का स्वरूप प्रतिष्ठापित होता है।

वह कितना पावन है, कितना अनुकरणीय, कितना उदात्त है। उसके जैसा इस संसार में कुछ भी नहीं, ईश्वर सच में इस धरती का अमृत है। उसे पहचानकर हम अपने जीवन को सुख-सौभाग्य से परिपूर्ण करते हैं।

ईश्वर महान आकांक्षाओं का वृक्ष-बीज है। उसी से अधिसंचालित हो मनुष्य अपने प्रगति-पथ पर बढ़ सकता है। ईश्वर के बिना कोई मुक्ति नहीं तथा जहाँ मुक्ति नहीं है, वहाँ सभी कार्य निरुपयोगी एवं व्यर्थ दिखाई देते हैं।

ईश्वर हमारी अंतरात्मा की पुकार है, उसे झुठलाया नहीं जा सकता। उसके बिना जीवन परिपूर्ण नहीं बनता, क्षुद्र आकांक्षाओं के तले मनुष्य स्वयं को कितना भी देख ले, परंतु ईश्वर के सामीप्य से ही उसे दिव्यता, प्रकाश एवं आरोहण का पथ दिखाई देता है। ईश्वर हम सब की साझी आध्यात्मिक धरोहर का नाम है। ❑

शिष्यों ने रामकृष्ण परमहंस से पूछा—"ठाकुर! शास्त्रों में चार तरह की आत्माओं का वर्णन है—बद्ध, मुमुक्षु, मुक्तात्मा और नित्य। इनमें क्या अंतर है?" स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने उत्तर दिया—"तुम लोगों ने मछुआरे को मछली पकड़ते देखा होगा। जब मछुआरा मछलियों को पकड़ने के लिए जाल फेंकता है तो उसमें कुछ मछलियाँ ऐसी होती हैं, जो जाल में नहीं फँसतीं—वे नित्यात्मा हैं, इन पर माया के जाल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कुछ मछलियाँ ऐसी होती हैं जो पहले तो फँस जाती हैं, पर फिर थोड़ी उछल-कूद कर भागने में सफल हो जाती हैं—वे मुक्तात्मा हैं। कुछ ऐसी होती हैं, जो प्रयत्न करती रहती हैं और यदि वहाँ नहीं निकल पाईं तो कहीं और निकल जाती हैं, वे मुमुक्षु हैं। कुछ मछलियाँ ऐसी हैं, जो बँधी की बँधी रह जाती हैं—वे बद्ध हैं। इन्हें मायारूपी संसार ही सत्य लगता है और ये त्रिगुणातीत परमात्मा का कोई भान नहीं कर पातीं।" शिष्यों को गूढ़ विषय सरलता से समझ में आ गया।

आत्मज्ञान : मनुष्य के उत्थान का पथ

आत्मज्ञान का अर्थ है, अपने आत्मपथ का ज्ञान। जिसे यह भी पता नहीं कि जो कुछ मैं करता हूँ, वह किसलिए करता हूँ तथा किस प्रकार मैं अपने पथ को पहचान कर आगे बढ़ूँ वह सब कुछ जान जाए—जिस ज्ञान की चर्चा हो रही है वह साधारण नहीं, उसके जैसी दूसरी वस्तु मिलनी भी संभव नहीं।

ज्ञान का एक आयाम भौतिक जगत् से संबंधित है तो दूसरा उसके व्यक्तित्व के आंतरिक आयाम, आत्मचेतना की विस्तार-प्रक्रिया से है। मनुष्य का चिंतन जब पदार्थ की श्रेणी से ऊपर उठ परमात्मा की दिव्य पुकार के अनुरूप ऊर्ध्वगामी हो उठता है; जब उसमें आत्मप्रेरणा अनुसार जीवन को नवनिर्मित कर विषय-वासनाओं के त्याग एवं अपनी मनोभूमि के परिष्कार का उत्साह जन्मने लगता है; जब वह संकुचित दृष्टिकोण एवं आपाधापी से दूर कल्याण के मार्ग पर प्रवृत्त होता है, जब उसका स्वार्थ गल कर परमार्थ का चयन करता है; जब पाप और पतन उसके जीवन से चले जाते हैं, तब वह अपने वास्तविक स्वभाव में जा प्रतिष्ठित होता है।

यही आत्मज्ञानरूपी औषधि उसे हर बुराई से बचाती है एवं फिर उसका जीवन विषय-वासनाओं की आग से बचता हुआ आत्मावलोकन की दिशा में बढ़ चलता है। आत्मज्ञानी को किसी बात की चिंता नहीं होती; क्योंकि उसका चिंतन दिव्य ज्ञान के तले परिष्कृत होता जाता है।

जिसने अपने अंतस् के परिष्कार की प्रक्रिया को जान लिया, जिसके भीतर आत्मज्योति का दिव्य निर्झर लहरा उठा, जो पदार्थ की गुलामी को त्यागकर ईश्वर की दिव्य संतान कहलाने के योग्य बना उसी व्यक्ति को इस श्रेय के पथ पर बढ़ने का एवं जीवन में सच्ची शांति को प्राप्त कर पाने का अवसर प्राप्त होता है।

जिसे आत्मा का बोध है, उसे जीवन में आगे बढ़ने एवं लक्ष्य प्राप्त करने से कोई नहीं रोक सकता। आत्मा वह दिव्य-ज्योति है, जो किसी के कहे बिना भी स्पष्ट रूप से अपना मंतव्य जानती है, उसे विभ्रमित नहीं किया जा सकता तथा उसके द्वारा मानव से महामानव बनने की यात्रा सदा गतिशील रहती है। मनुष्य जीवन का यही सच्चा सौभाग्य है कि उसे आत्मा का बोध कराया जाए एवं फिर शांति एवं वैभव की खोज में बाहर भटकने की अपेक्षा आंतरिक अनुसंधान पर ध्यान दिया जाए।

जीवन की इस सबसे बड़ी संपदा को मनुष्य पहचाने एवं तदनुसार कर्त्तव्य का निर्धारण करे तो उसके जीवन में कोई भी कठिनाई एवं अवांछनीयता शेष नहीं रह जाते। वहाँ पर किसी भी प्रकार के अंधकार एवं कुत्सित वृत्तियों का प्रभाव शेष नहीं रहता एवं मनुष्य का चिंतन महानता का अनुगामी बनकर स्वतः ही मनुष्य के विकास का पथ प्रशस्त कर देता है।

हमें अपनी आत्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि वह सदैव हमें कल्याण के पथ पर, निर्भीकतापूर्वक एवं दिव्यता के संसर्ग में उठाती चले तथा मानव जीवनरूपी यह अमूल्य उपहार यों ही व्यर्थ न जाकर प्रकृतिप्रदत्त संपदाओं एवं मानवीय उत्कृष्टताओं से भरा रहे एवं इसके द्वारा हम निरंतर आत्मिक उत्सर्ग को प्राप्त हो सकें। ❑

महान संत गोस्वामी तुलसीदास

भगवान के विविध अवतारों व देवों की लीलाभूमि, संतों, ऋषियों, मुनियों व योगियों की कर्मभूमि और तपोभूमि होने के कारण भारत सदा से ही आध्यात्मिक ऊर्जा से ऊर्जस्वित-आप्लावित रहा है और इसलिए भारत की भूमि जन-जन को सहज ही ज्ञान, कर्म और भक्ति से अनुप्राणित करती रही है।

भारतभूमि महान संतों की कर्मभूमि व तपोभूमि रही है। भारत के महान संतों में गोस्वामी तुलसीदास भी रहे हैं, जिनका आविर्भाव विक्रम संवत्-1554 की श्रावण शुक्ल सप्तमी को उत्तर प्रदेश के बांदा जिले के राजापुर गाँव में धर्मपरायण पिता आत्माराम दुबे व माता हुलसी के आँगन में हुआ था। उनके आविर्भाव को लेकर बहुत ही सुंदर कहा गया है—

सवत् पंद्रह सौ चउवन विषै, कालिंदी के तीर।
श्रावन शुक्ला सप्तमी, तुलसी धरेऊ शरीर॥

कहते हैं कि जन्म के समय तुलसीदास तनिक भी रोए नहीं और उनके मुँह में सभी बत्तीस दाँत उगे हुए थे और उनके शरीर का आकार पाँच वर्ष के बालक जैसा था।

वे अपने जन्म के समय रोए नहीं, बल्कि 'राम' बोले इसलिए उनका नाम 'रामबोला' पड़ा। उनका जन्म अभुक्त मूल नक्षत्र में हुआ था, जिसे शुभ नहीं माना जाता। इस कारण उनके माता-पिता किसी अमंगल की आशंका से भयभीत थे। उनके जन्म के कुछ समय बाद ही उनके माता-पिता परलोक सिधार गए।

तब उनके घर में काम करने वाली चुनिया नाम की दासी उन्हें अपने गाँव ले गई और साढ़े पाँच वर्ष तक उनकी देख-भाल करती रही, जिसके पश्चात उसकी भी मृत्यु हो गई। तत्पश्चात अनाथ बालक रामबोला दर-दर भटकता रहा, द्वार-द्वार भटकता रहा। ऐसा माना जाता है कि उस बालक के दुःख से द्रवित होकर माता पार्वती एक ब्राह्मण महिला का वेश धारण कर रामबोला को उन दिनों भोजन कराती थीं।

इस प्रकार दैवी कृपा के संरक्षण में वे बड़े होने लगे। उन्हीं दिनों रामशैल पर निवास कर रहे श्री नरहर्यानंद जी ने भगवान शंकर की प्रेरणा से रामबोला नाम से चर्चित हो चुके इस बालक को ढूँढ़ निकाला और विधिवत् नामकरण कर उसका नाम तुलसीदास रखा। उसके उपरांत संवत्-1569 माघ शुक्ल पंचमी को उन्होंने उसका यज्ञोपवीत संस्कार संपन्न कराया।

संस्कार के समय भी बिना सिखाए ही बालक रामबोला ने गायत्री मंत्र का स्पष्ट उच्चारण किया, जिसे देखकर वहाँ उपस्थित सभी लोग चकित हो गए। तत्पश्चात श्री नरहर्यानंद (नरहरि बाबा) ने वैष्णवों के पाँच संस्कार करके बालक को 'राम' मंत्र की दीक्षा दी और अयोध्या में ही रहकर उसे विद्याध्ययन कराया।

ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी, विक्रम संवत्—1583 को राजापुर से थोड़ी ही दूर यमुना के उस पार स्थित एक गाँव की सुंदरी, रूपवती कन्या 'रत्नावली' के साथ उनका विवाह हुआ। कुछ समय के लिए वे काशी चले गए और वहाँ शेष सनातन जी के पास रहकर वेद-वेदांग के अध्ययन में जुट गए, पर बाद में पत्नी की आसक्ति में वे राजापुर लौट आए और पत्नी के साथ रहने लगे।

अपनी पत्नी के प्रति बहुत गहरी आसक्ति होने के कारण वे एक पल के लिए भी पत्नी से अलग नहीं रहना चाहते थे। इसलिए जब एक दिन रत्नावली अपने भाई के साथ अपने नैहर चली गई, तब वे व्यग्र हो उठे और अपनी पत्नी से मिलने रात में ही चल दिए। वे रात्रि के अँधेरे में छिपकर अपनी ससुराल पहुँचे और पत्नी के कक्ष में पहुँच गए।

अपने पति को इस प्रकार रात्रि में छिपकर आया हुआ देखकर रत्नावली को बड़ा संकोच और रोष हुआ और उसने उन्हें धिक्कारते हुए कहा—

हाड़ मांस की देह मम,
तापर जितनी प्रीति।
तिसु आधो जो राम प्रति,
अवसि मिटिहि भवभीति॥

अर्थात आपकी जैसी आसक्ति मेरे हाड़-मांस के शरीर में है ऐसी और इसकी आधी आसक्ति भी यदि भगवान में होती तो आपका बेड़ा पार हो जाता। यह बात उनको चुभ गई और वे उसी समय रात्रि में ही वहाँ से चल दिए। वहाँ से वे सीधे प्रयाग पहुँचे और विरक्त हो गए एवं वे तीर्थाटन करते हुए प्रयाग से पैदल ही जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम्, द्वारका, बदरीनाथ आदि तीर्थों के भ्रमण पर निकल गए।

तीव्र आध्यात्मिक ऊर्जा से ऊर्जस्वित-आप्लावित तीर्थों के भ्रमण, दर्शन, प्रवास के प्रभाव से उनके अंदर वैराग्य की भावना और भी अधिक बलवती और सुदृढ़ होती गई और धीरे-धीरे संसार के प्रति उनकी आसक्ति अनासक्ति में बदलती गई और भगवान के प्रति अनुराग में बदलती गई, इस प्रकार पत्नी के उपदेश ने उन्हें तुलसीदास बना दिया और अपनी पत्नी को तुलसीदास जी ने लिख भेजा—

कटे एक रघुनाथ संग, बाँधि-जटा सर केस।
हम तो चाखा प्रेम रस, पत्नी के उपदेश॥

उनके गुरु नरहर्यानंद ने तुलसीदास जी को बालपन में वराह क्षेत्र में पहली बार रामायण सुनाई थी। तुलसीदास ने रामचरितमानस में इसका उल्लेख करते हुए कहा है—

मैं पुनि निज गुर सन सुनी, कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत॥

अर्थात फिर वही कथा मैंने वराह क्षेत्र में अपने गुरु से सुनी, परंतु उस समय मैं लड़कपन के कारण बहुत बे-समझ था, अस्तु उसको उस समय सम्यक रूप से समझ नहीं सका।

तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में आगे उल्लेख किया है कि उनके गुरु ने फिर उन्हें बार-बार रामायण सुनाई। गुरु से प्राप्त गायत्री मंत्र और 'राम' मंत्र की नित्य उपासना करते हुए तुलसीदास के हृदय में अपने आराध्य 'राम' के प्रति प्रीति प्रगाढ़ होती गई और उन्होंने स्वयं को पूर्णरूपेण अपने इष्टदेव को अर्पित कर दिया और अपने आराध्य, अपने इष्ट भगवान राम के प्रति कहा—

ब्रह्म तू हौं जीव तू, तू ठाकुर हौं चेरो।
तात मात गुरु सखा तू, सब विधि हितू मेरो॥

तुलसीदास जी का हृदय अपने आराध्य के साक्षात् दर्शन को व्याकुल हो उठा। कुछ समय राजापुर में रहने के बाद वे पुनः काशी चले गए और वहाँ जनता को रामकथा सुनाने लगे। कहते हैं कि तुलसीदास जी शौच के लिए नित्य गंगा पार जाया करते थे और लौटते समय लोटे का बचा हुआ जल एक पेड़ की जड़ में डाल देते थे। उस पेड़ पर एक प्रेत रहता था।

जल से तृप्त होकर वह प्रेत एक दिन तुलसीदास जी के सामने प्रकट हुआ और उसने कहा कि मुझसे कुछ वर माँगो। तुलसीदास जी ने अपने आराध्य भगवान राम के दर्शन की लालसा प्रकट की। प्रेत ने बतलाया—"मंदिर में सायंकाल रामायण की कथा होती है, वहाँ कोढ़ी के वेश में नित्य हनुमान जी कथा सुनने आते हैं। वे सबसे पहले

आते हैं और सबसे अंत में जाते हैं। तुम उन्हें ही पकड़ो।''

तुलसीदास जी ने ऐसा ही किया। वे उस कथास्थल पर पहुँचे और वहाँ वेश बदलकर बैठे हनुमान जी के चरण पकड़कर जोर-जोर से रोने लगे। भगवान राम के प्रति उनके हृदय में दृढ़ भक्ति को देखकर हनुमान जी ने तुलसीदास जी से कहा—''जाओ, तुम्हें चित्रकूट में श्रीराम जी के दर्शन होंगे।''

हनुमान जी का आशीष प्राप्त कर वे चित्रकूट पहुँचे। चित्रकूट में उन्होंने रामघाट पर अपना एक स्थान तय किया और वहीं प्रभु के दर्शन की लालसा से साधनारत हो गए और गुरु से प्राप्त 'राम' मंत्र का जप-ध्यान करने लगे। वहीं एक दिन वन में घूमते समय उन्हें घोड़े पर सवार अद्भुत छवि वाले दो सुंदर राजकुमार—एक श्याम और एक गौर, धनुष-बाण लिए दिखाई पड़े। उनके दिव्य रूप को देखकर वे उन्हें देखते ही रह गए, पर उन्हें पहचान न सके।

तभी हनुमान जी ने आकर पूछा—''क्या तुमने कुछ देखा?'' ''हाँ! दो सुंदर राजकुमार इसी राह से अभी-अभी घोड़े पर गए हैं।'' हनुमान जी ने कहा—''वे ही राम-लक्ष्मण थे।'' भगवान राम को नहीं पहचान पाने के कारण तुलसीदास बहुत दुःखी हुए। तब हनुमान जी ने उन्हें ढारस बँधाते हुए कहा—''कल प्रातः फिर से उनके दर्शन होंगे।''

उस दिन विक्रम संवत्—1607 की मौनी अमावस्या थी। दिन था बुधवार। तुलसीदास चित्रकूट के घाट पर बैठकर प्रभु के लिए ही प्रेम और भक्ति से सराबोर हो चंदन घिस रहे थे कि तभी भगवान राम उनके सामने आ गए और कहा—''बाबा हमें चंदन दो।'' तुलसीदास की दृष्टि ऊपर को उठी तो भगवान राम की अनूप रूपराशि को देखकर उनकी आँखें मुग्ध हो गईं। हृदय में प्रेम उमगने-उफनने लग गया।

उनके शरीर की सारी सुध-बुध जाती रही। और वे अपलक नेत्रों से भगवान को निहारते रहे। वे भगवान के दर्शन में ऐसे खोए कि वे प्रभु की वाणी—''बाबा हमें चंदन दो'' भी नहीं सुन सके। तब हनुमान जी ने तुलसीदास जी की सहायता के लिए तोते के रूप में आकर एक दोहा बोला—

चित्रकूट के घाट पर भइ संतन की भीर।
तुलसिदास चंदन घिसें तिलक देत रघुबीर॥

तब तुलसीदास जी भगवान को चंदन देने को तत्पर हुए, पर भक्तवत्सल भगवान राम ने स्वयं ही तुलसीदास जी से चंदन लेकर अपने और तुलसीदास के माथे पर लगाया और अंतर्धान हो गए।

एक बार तीर्थाटन करते हुए तुलसीदास जी प्रयाग पहुँचे। वहाँ माघ मेला चल रहा था। वे वहाँ कुछ दिन रुक गए और छह दिन के बाद उन्हें एक वृक्ष के नीचे भरद्वाज और याज्ञवल्क्य मुनि के दर्शन हुए।

वहाँ उस समय रामकथा हो रही थी, जो तुलसीदास जी ने अपने गुरुदेव से सूकर क्षेत्र में सुनी थी। वहाँ से वे काशी आ गए और प्रह्लादघाट पर रहने लगे। संवत् 1631 की रामनवमी के दिन ग्रहों की स्थिति लगभग वैसी ही थी, जैसी त्रेतायुग में राम जन्म के समय थी।

इसी पावन दिवस पर श्री हनुमान जी की आज्ञा और प्रेरणा से तुलसीदास जी ने प्रातःकाल श्रीरामचरितमानस की रचना प्रारंभ की। दो वर्ष, सात महीने और छब्बीस दिनों में रामचरितमानस की रचना पूर्ण हुई। संवत् 1633 में मार्गशीर्ष मास में राम विवाह के दिन रामचरितमानस के सातों कांड पूर्ण हुए।

रामचरितमानस के पूर्ण होने पर हनुमान जी पुनः प्रकट हुए और तुलसीदास जी द्वारा रचित रामचरितमानस सुनी और उन्हें आशीर्वाद दिया कि 'यह कृति तुम्हारी कीर्ति को अमर कर देगी।'

रामचरितमानस में प्रवाहित ज्ञान, कर्म और भक्ति के त्रिवेणी संगम में स्नान कर कोटिशः साधक, उपासक, आराधक, भक्त भगवत्प्राप्ति कर धन्य-धन्य हुए और आज भी हो रहे हैं।

एक बार तुलसीदास जी के आशीर्वाद से एक विधवा का पति पुनः जीवित हो गया। यह खबर बादशाह अकबर तक पहुँची। उसने तुलसीदासजी को अपने दरबार में बुलवाया और कहा—"सुना है तुमने मुरदे को भी जिंदा कर दिया है। हमें भी कुछ चमत्कार करके दिखाओ।"

अकबर की बातें सुनकर गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा—"मुझे कोई भी करामात या चमत्कार नहीं आता। मैं राम-नाम के अलावा कुछ भी नहीं जानता।" इस पर क्रोध में आकर अकबर ने उन्हें जेल में डाल दिया और कहा—"जब तक करामात, चमत्कार नहीं दिखाओगे, तब तक तुम कैद ही रहोगे।"

यहीं पर उन्होंने हनुमान जी की स्तुति में हनुमान चालीसा लिखना आरंभ किया। वे प्रतिदिन एक चौपाई लिखते और चालीसवें दिन जब हनुमान चालीसा पूर्ण हुई तब हजारों बंदरों ने फतेहपुर सीकरी पर हमला कर दिया।

तब अकबर के रक्षक ने संत को कैद से मुक्त करने की सलाह दी। जैसे ही अकबर ने तुलसीदास को मुक्त किया वैसे ही सारे बंदर वापस लौट गए। बादशाह अकबर ने तुलसीदास जी के पैरों में गिर कर क्षमा माँगी।

तुलसीदास जी द्वारा रचित हनुमान चालीसा श्री हनुमान जी को समर्पित है और सनातन धर्म में यह जन-जन के बीच लोकप्रिय है। संकट, भय, तनाव, प्रेतबाधा व नकारात्मक ऊर्जा आदि से साधकों को मुक्त कर यह साधकों के लिए मुक्ति व भगवत्प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करती है।

हनुमान चालीसा का पूर्ण श्रद्धा, भक्ति, विश्वास के साथ पाठ करने पर साधक को हनुमान जी की कृपा अवश्य प्राप्त होती है, उसके मनोबल, आत्मबल में वृद्धि होती है और वह भौतिक व आध्यात्मिक क्षेत्र में सफल होता है।

रामचरितमानस व हनुमान चालीसा के अलावा तुलसीदास जी ने विनय पत्रिका, दोहावली, गीतावली, पार्वती मंगल, जानकी मंगल आदि अन्य ग्रंथों की भी रचना की, जो काफी प्रसिद्ध हुए। श्रीरामचरितमानस एक महाकाव्य के रूप में आज जगत् प्रसिद्ध है और जन-जन के बीच लोकप्रिय है। सनातन धर्म में यह वेद, उपनिषद् और पुराण आदि ग्रंथों की तरह ही फलदायी, पूज्य और पठनीय है।

सनातन धर्म के प्रमुख त्योहारों और विविध संस्कारों के पुण्य अवसर पर श्रीरामचरितमानस का पाठ बड़ी श्रद्धा व भक्ति के साथ किया जाता है। श्रीरामचरितमानस में ज्ञान, कर्म, भक्ति के अलावा देव संस्कृति, सनातन संस्कृति की पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक-आध्यात्मिक परंपराओं की गंगा रामचरितमानस के सातों कांडों में अविरल प्रवाहित हुई है।

रामचरितमानसरूपी सद्ग्रंथ ने अगणित लोगों को बुराइयों के गहन अँधेरे से निकालकर धर्म और भक्ति के मार्ग पर चलने को प्रेरित किया है, अगणित भक्तों को उनके आराध्य भगवान से मिलवाया है और अगणित मुमुक्षुओं को मोक्ष के द्वार तक पहुँचाया है।

तुलसीदास जी ने श्रीरामभक्ति करते हुए, श्रीराम कथा कहते और गाते हुए शेष समय काशी में ही गुजारा और 126 वर्ष की आयु जीकर संवत् 1680 श्रावण शुक्ल सप्तमी को अस्सी घाट पर 'राम-राम' कहते हुए अपने शरीर का परित्याग किया। वे सदा-सदा के लिए पूज्य हो गए, अमर हो गए। तुलसीदास जी के स्मरण में हर वर्ष श्रावण शुक्ल सप्तमी को तुलसी जयंती बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाई जाती है। ❑

पर्व विशेष – गुरु नानकदेव जयंती

एक ओंकार सतनाम

भारतवर्ष की सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक यात्रा में आदिकाल से अद्यतन अनेक युगांतकारी, क्रांतिकारी व परिवर्तनकारी कालखंड प्रस्तुत हुए हैं। ऐसा ही एक विशेष युग बारहवीं सदी से लेकर अठारहवीं सदी तक का रहा है। इतिहास के झरोखों से देखें तो इस काल में भारत की अस्मिता, पहचान और मूल्यों पर गहन आघात और आक्रमण हुए हैं।

इस कालखंड में सांस्कृतिक, सामाजिक व राजनीतिक जीवन पूर्णरूपेण आंदोलित और संघर्षमय रहा है, लेकिन इसी काल में पुनर्जागरण के तीव्र स्वर भी मुखरित हुए हैं। एक से बढ़कर एक महापुरुषों, संतों, सुधारकों का आगमन भारतभूमि पर हुआ और उनके प्रयास-पुरुषार्थ ने ही राष्ट्र, समाज एवं संस्कृति को सुरक्षित, संरक्षित एवं विषमताओं पर विजय प्राप्त कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

रामानुज, रामानंद, कबीर, मीराबाई, तुलसीदास, चैतन्य महाप्रभु, सूरदास, तुकाराम, समर्थ गुरु रामदास जैसे महान भक्त संतों-उद्धारकों ने भारतवर्ष के पुनर्जीवन में अपना अमूल्य योगदान दिया है। भारत की दिव्य महापुरुषों की इसी शृंखला में सिख धर्म के प्रणेता महान गुरु नानकदेव भी आते हैं।

भारतभूमि पर गुरु नानकदेव का प्रादुर्भाव सन् 1469 में हुआ। इनका जन्म स्थान तलवंडी, वर्तमान में पाकिस्तान के पंजाब प्रांत में ननकाना साहिब के रूप में समस्त सिख समुदाय की आस्था व प्रेरणा का केंद्र है। भारतीय इतिहास की दृष्टि से जिस युग में गुरु नानक का जन्म हुआ, वह घोर निराशा, डर, आक्रमण, अशांति और निरंतर पतन व अंधकार में डूबते हुए भ्रांत जनमानस का युग था।

सांप्रदायिक संघर्ष और धार्मिक विद्वेष से आक्रांत हुई सोलहवीं शताब्दी में गुरु नानकदेव का जन्म भारत के नवजीवन और नवनिर्माण का प्रकटीकरण था। साधक, योगी, भक्त, संत, सद्गृहस्थ, सुधारक, कवि, राष्ट्रभक्त, कर्मयोगी, दार्शनिक, विचारक जैसे अनेकों अलंकरणों से विभूषित गुरु नानक का जीवन हमारे राष्ट्र, संस्कृति और मानवता के लिए अत्यंत गौरवशाली युग का प्रतीक-पर्याय है। उनके सत्प्रयासों से एक ईश्वर, विश्वबंधुत्व, एकता, समानता जैसी दिव्य प्रेरणाओं व उपदेशों से यह धराधाम धन्य हुई है।

गुरु नानकदेव के व्यक्तित्व में अलौकिकता और विलक्षणता बाल्यकाल से ही थी। कहा जाता है कि वैसे तो उन्हें छोटी उम्र में ही संस्कृत, उर्दू, फारसी आदि कई भाषाओं का ज्ञान था, परंतु पढ़ाई से ज्यादा उनकी रुचि ईश्वरप्रेम और भक्ति में थी। विद्यार्थी जीवन में भी उनके उच्चकोटि के विचार रहे; जैसे—अध्यापक के पूछने पर उन्होंने कहा—"सांसारिक पढ़ाई से ज्यादा मुझे परमात्मा की पढ़ाई सुखद लगती है।"

स्वयं के जीवन का ध्येय प्रकट करते हुए उनके विचार थे—"मोह को जलाकर, उसे घिस कर स्याही बनाओ, बुद्धि को श्रेष्ठ कागज बनाओ, प्रेम की कलम बनाओ और चित्त को लेखक। गुरु से पूछकर विचार लिखो और यह भी लिखो कि उस परमात्मा का न आदि है, न अंत है और न उसकी कोई सीमा है।"

कम उम्र में उनके ऐसे विचार-भावों ने उन्हें शीघ्र ही सिद्ध संत के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। चारों ओर उनकी दिव्य प्रतिभा व चमत्कारों की चर्चा होने लगी थी। मात्र सोलह वर्ष की आयु में ही उनका विवाह सुलक्खनी नामक कन्या से हो गया था, जिससे उन्हें दो पुत्रों की प्राप्ति हुई—32 वर्ष की अवस्था में पहले पुत्र श्रीचंद व 4 वर्ष पश्चात दूसरे पुत्र लखमीदास का जन्म हुआ। आगे चलकर श्रीचंद उदासी संप्रदाय के महान योगी, सिद्ध संत हुए।

गुरु नानकदेव जी का गृहस्थ जीवन भी सिद्ध योगी की तरह बंधनमुक्त ही रहा। आध्यात्मिक चिंतन, सत्संग और परमात्मचर्चा में ही उनका सारा समय व्यतीत होता रहा। नामस्मरण व नामदान की ईश्वरीय स्फुरणा को धारण कर वे उम्र के 36 वर्ष के उपरांत अपने चार साथियों—मरदाना, लहना, बाला और रामदास को लेकर तीर्थयात्रा एवं सत्संग के लिए निकल पड़े थे।

धर्मप्रचार की दृष्टि से उनकी ये यात्राएँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहीं। इन यात्राओं को 'उदासी' कहा जाता है। ये यात्राएँ अखंड भारत के प्रायः सभी प्रमुख स्थानों-शहरों में, मक्का-मदीना, काबुल-कंधार से लेकर दुर्गम हिमालय के तिब्बत तक 1507 से लगभग 1521 तक अनवरत चलती रहीं। उनकी इन यात्राओं ने हिंदू समाज में उत्साह, धार्मिक विश्वास जगाने और हिंदू-मुसलिम संघर्ष को कम करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

भारत की संत परंपरा में बहुत से ऐसे भी हैं, जिनका हिंदू-मुसलिम दोनों धर्मों में समान महत्त्व रहा। गुरु नानकदेव ऐसे ही सिद्ध संत रहे। हिंदू धर्म के होने के बावजूद भी उनके मुसलमान भक्तों की संख्या बहुत रही। मरदाना तो हर पल साथ रहने वाला उनका परम भक्त था ही, गुरु भजन गाते और मरदाना खाप बजाता था। इसके अतिरिक्त सिकंदर लोदी, बाबर, नवाब दौलत खाँ, करतारपुर के करोड़िया, जूनागढ़ के नवाब, सूफी संत शाह सराफ, पीर बहाउद्दीन, बाबा बुद्धन, अब्दुल रहमान, फकीर मुराद जैसे असंख्य मुसलिम भक्तों ने अनन्य भाव से गुरु नानकदेव का सान्निध्य प्राप्त किया।

वस्तुतः गुरु नानकदेव के काल में धर्म-आडंबर और पाखंड-मिथ्याचार, भेदभाव बहुत बढ़ गया था। सांप्रदायिक संघर्ष और धार्मिक कट्टरता चरम पर थी, ऐसे में उन्होंने अबाध आध्यात्मिक यात्राओं द्वारा एकता, प्रेम, विश्वास और मानवता के शिक्षण द्वारा सर्वथा नया सकारात्मक वातावरण बनाया और कल्याणकारी मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने बिना किसी जात-पाँत, भेदभाव के पूजा-उपासना का अधिकार सभी में बाँटा और सर्वत्र एक ईश्वर, एक नाम की घोषणा की।

ईश्वर की सर्वव्यापकता, उस तक सभी के लिए पहुँचने का साधन तथा विश्वमानवता में एकता और समानता की भावना—यही उनके संत जीवन का मूल ध्येय रहा। उनकी साधनापद्धति अत्यंत सहज और आडंबररहित थी। गुरुकृपा, परमात्मकृपा और सच्चरित्र से व्यवहार—यही सर्वोत्तम मार्ग उन्होंने विश्व समाज को समझाया। गुरु से प्राप्त नामस्मरण ही उनकी साधना का मूलमंत्र रहा। सच्चे गुरु के प्रति प्रेम और समर्पण मात्र से वे ईश्वरप्राप्ति को संभव मानते थे।

गुरु नानकदेव ने समाज को अपने व्यक्तित्व से यह संदेश दिया कि समस्त सांसारिक कार्यों को करते हुए नामस्मरण से भी मानव जाति का कल्याण हो सकता है। उनका सहज सिद्धांत रहा कि सब कुछ ईश्वर के हाथ में है और गुरुकृपा से ईश्वर मिलते हैं, मनुष्य के हाथ कुछ नहीं। इसलिए सतत

नामस्मरण और गुरुकृपा के निमित्त ही जीवन लगाना परम श्रेयस्कर है। उनकी दृष्टि से शिक्षित एवं विद्वान वही है, जो दूसरों का कल्याण करता है, जो निर्मल हृदय से ईश्वर को पुकारता है और अन्यों के कष्ट दूर करने की प्रार्थना करता है।

ऐसे दिव्य परंतु मार्मिक उपदेश और मानवमात्र से प्रेम व कल्याण की भावना ही उन्हें भारत के महान संतों-सिद्धों-सुधारकों की अग्रिम पंक्ति में खड़ा करते हैं। भारत की संत परंपरा में उन्हें निर्गुण भक्तिधारा का संत माना जाता है, परंतु उनकी वाणी में धर्म-अध्यात्म के और भी पहलू सम्मिलित रहे हैं। जैसे आचार्य शंकर के समान एक ईश्वर की भावना, रामानुज की जात-पाँत रहित भक्ति और ऐसे अनेक पूर्ववर्ती संतों की प्रेरणाएँ उनकी वाणी से मुखरित हुई हैं। जीवन के अंतिम समय में अपने भक्त अंगददेव को गद्दी पर आसीन कराके वे 22 सितंबर, 1539 को धराधाम से महाप्रयाण कर गए। महान संत, योगी, भक्त, सुधारक, उद्धारक के रूप में उनका जीवन आज भी विश्वमानवता के लिए प्रकाशस्तंभ की भाँति है। ❑

पश्चिम जर्मनी के एक नगर में एलेक्जेंडर नामक युवक नौकरी की तलाश में था। उसे एक मोटर कंपनी में सफाई का काम मिला। वह उसे इतनी मुस्तैदी के साथ करता था कि मालिक उसे पसंद करने लगा। उसके प्रति मालिक का यह भरोसा देख बाकी कर्मचारियों ने ईर्ष्या के कारण उसे झूठे इल्जाम में फँसा दिया। उसे जेल की सजा काटनी पड़ी, जहाँ उसका एक गिरोह तैयार हो गया। गिरोह जेल से बाहर निकलने के बाद डकैती डालने लगा और वह दोबारा पकड़ा गया।

इस बार जब वह जेल में सजा पा रहा था तो उसे आत्मग्लानि होने लगी। घोर पश्चात्ताप के क्षणों में उसने साबुन के रैपर पर अपनी व्यथा एक कविता के रूप में लिखी, जो जेल के एक पादरी के हाथ लग गई। उस पादरी को लगा कि इस व्यक्ति का विकास किया जा सकना संभव है और उसने जेल के अधिकारियों से आग्रह करके एलेक्जेंडर के लिए लिखने के साधन जुटा दिए।

एलेक्जेंडर ने वहाँ रहते हुए एक उपन्यास लिखना आरंभ किया और उसे जेल से बाहर आने पर मजदूरी करते हुए पूरा किया। वह उपन्यास 'दि फोट्रेस' के नाम से प्रकाशित हुआ। इस कृति ने उसे पूरे जर्मनी में प्रसिद्ध कर दिया। एक सजायाफ्ता मुजरिम से एक प्रसिद्ध लेखक बनना मनुष्य की असीम संभावनाओं की कहानी है। हममें से प्रत्येक में ये संभावनाएँ निहित हैं, मात्र उन्हें प्रयास कर साकार करने की आवश्यकता है।

आत्मदेव की साधना

मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है। इसमें ईश्वर की यदि कोई सहायता मिलती भी है, तो वह उसके कर्मफल विधान के अंतर्गत मनुष्य के पुरुषार्थ से जुड़ी होती है। इस कारण मनुष्य जीवन का उत्कर्ष एवं उत्थान सब उसके पुरुषार्थ पर, पात्रता के विकास पर टिका हुआ है।

परमपूज्य गुरुदेव ने उपासना, साधना एवं आराधना के रूप में जीवन-साधना का जो मार्ग सुझाया, इसमें आत्मदेव की साधना, जीवन देवता की साधना को सर्वोपरि माना व इसे नकद धर्म कहकर संबोधित किया; क्योंकि उसके फल एवं सत्परिणाम हाथोंहाथ तत्काल ही देखे जा सकते हैं।

संयम-स्वाध्याय-सेवा-साधना के रूप में पूज्य गुरुदेव के व्यावहारिक अध्यात्म के सूत्र इसी दर्शन का प्रतिपादन करते हैं। स्वामी विवेकानंद भी पहले स्वयं पर विश्वास पर बल देते रहे, फिर ईश्वर पर। बिना स्वयं पर विश्वास किए, ईश्वर पर विश्वास अधिक फलीभूत एवं प्रभावी नहीं होता। आखिर कहा भी गया है कि ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है, जो स्वयं की सहायता करते हैं।

आत्मदेव की साधना व्यक्तित्व के निर्माण एवं पात्रता के विकास से जुड़ी हुई है, जिसका पहला चरण अपनी स्थिति का बोध है। इसके अंतर्गत व्यक्ति नित्य अपनी समीक्षा एवं निरीक्षण द्वारा अपनी विशेषताओं, न्यूनताओं, जीवन की संभावनाओं एवं चुनौतियों से रूबरू होता है और इसके आधार पर आगे जीवन का समग्र स्वरूप निर्धारित करता है, जिसे लक्ष्य निर्धारण के रूप में जाना जाता है।

जीवन का लक्ष्य निर्धारण, पेशेवर लक्ष्य और जीवन लक्ष्य के रूप में तय होता है। पेशेवर लक्ष्य आर्थिक स्वावलंबन से जुड़ा हुआ है, जिससे परिवार का पालन-पोषण एवं जीवनयापन संभव हो सके और वह समुचित तैयारी के आधार पर सुनिश्चित हो जाता है। पूरा शिक्षा तंत्र इसी के लिए बना हुआ है।

इसके साथ जीवन लक्ष्य समूचे जीवन की व्यापकता को लिए हुए है, जो अपने जीवन के आंतरिक रुझान, स्वभाव एवं रुचि के अनुरूप समाज सेवा के विभिन्न रूपों में परिभाषित होता है।

अपने कैरियर के सुनिश्चित होने के बाद फिर जीवन लक्ष्य पर नित्य कुछ समय निकालते हुए काम किया जा सकता है। दोनों यदि एक हो जाएँ तो वह सोने पर सुहागे की स्थिति मानी जाएगी। हालाँकि इस आदर्श स्थिति को विरले सौभाग्यशाली ही उपलब्ध कर पाते हैं। लक्ष्य निर्धारण के साथ फिर नित्य आधार पर इन्हें प्राप्त करने का कार्य आगे बढ़ता है।

दैनिक लक्ष्यों को मूर्त रूप देने के लिए समय प्रबंधन की आवश्यकता पड़ती है, जिसमें दिन के एक-एक पल को सुनियोजित करते हुए कार्य को अंजाम दिया जाता है। समय प्रबंधन में चार खंड आते हैं। पहले में दैनंदिन कर्त्तव्य, समयसीमा युक्त कार्य, आपात स्थिति आदि आते हैं, जिन्हें किसी भी रूप में पूरा करना होता है।

दिन का अधिकांश समय इनमें नियोजित करना होता है। दूसरा खंड दीर्घकाल के लिए उपयोगी

कर्त्तव्यों से जुड़ा हुआ होता है, जिनमें प्रायः चूक होती देखी जाती है।

इसमें आत्मबोध-तत्त्वबोध, डायरी लेखन, व्यायाम, परिवारजनों के लिए समय, स्वाध्याय-सत्संग, ध्यान आदि आते हैं, जिनके लिए नित्य कुछ समय देना होता है। तीसरे खंड में अनावश्यक व्यवधान, औचक संवाद-मुलाकात, मेहमान आदि आते हैं, जो पहले दो खंड के लिए निर्धारित समय पर डाका डालते प्रतीत होते हैं। ऐसे में न करने की आदत से लेकर कार्यों को टालने या इनके विवेकसंगत नियोजन का सहारा लिया जाता है।

चौथे खंड में वो सभी कार्य, आदतें शामिल हैं, जो समय व ऊर्जा को बरबाद करते हैं, जिसमें मोबाइल की लत, सोशल मीडिया पर अंतहीन समय गुजारना, दुर्व्यसन, बिगड़ी आदतें, गलत संगत, अस्वस्थ मनोरंजन, दूषित आहार-विहार आदि शामिल हैं—जिनका समय रहते परिमार्जन एवं सुधार अपेक्षित रहता है अन्यथा ये व्यक्तित्व को भीतर से खोखला करते हैं और जीवन की बरबादी का कारण बनते हैं।

समय के उचित प्रबंधन के साथ ही यह संभव होता है कि व्यक्ति आत्मोत्थान के अगले चरण की ओर बढ़ सके, जो है अपनी रचनात्मक संभावनाओं पर कार्य। यह अपनी किसी रुचि या आंतरिक ध्येय से जुड़ा हो सकता है। इसमें अध्ययन, लेखन से लेकर नृत्य, संगीत, कला एवं तकनीकी खोज, बागवानी आदि कुछ भी आ सकते हैं।

नित्य रूप से इनसे जुड़े रहने पर क्रमिक रूप में व्यक्ति के ज्ञान व कौशल में वृद्धि होती है और एक दिन व्यक्ति विषय विशेषज्ञ एवं अधिकारी पंडित के रूप में अपने चयनित क्षेत्र में योगदान की स्थिति तक पहुँचता है। सृजनात्मक उत्कृष्टता की इस स्थिति के साथ व्यक्ति में आत्मविश्वास का भाव जागता है, आत्मसम्मान पुष्ट होता है और वह सकारात्मक चिंतन के लिए आवश्यक भावदशा की पात्रता विकसित कर पाता है।

सकारात्मक चिंतन को एक ऐसी मनःस्थिति के रूप में परिभाषित किया गया है, जो चुनौतीपूर्ण स्थिति में भी आशा, उत्साह के भाव से लबरेज रहता हो।

इसमें व्यक्ति का ध्यान सकारात्मक पहलू पर केंद्रित रहता है और वह उदारता-सहिष्णुता की लचीली मनःस्थिति लिए होता है। व्यक्ति सही निर्णय लेने की संतुलित स्थिति में होता है और धैर्य व समझदारी से काम लेता है।

यह एक भावनात्मक संतुलन एवं भाव प्रवणता की स्थिति को भी दरसाता है, जिसमें व्यक्ति हीनता, कुंठा व ईर्ष्या-द्वेष जैसे नकारात्मक भावों से ऊपर उठकर निर्णय लेता है और अपने उच्चतर ध्येय की ओर अग्रसर होता है। इसके साथ भावनात्मक बुद्धिमता का विकास सुनिश्चित होता है।

स्वयं व दूसरों की भावनाओं की समझ, परस्पर समायोजन एवं सामंजस्य की स्थिति के साथ व्यक्ति का अंतरवैयक्तिक कौशल विकसित होता है। संवेदी श्रवण के आधार पर विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता में वृद्धि होती है और व्यक्ति समूह व समाज में सम्मान का अधिकारी बनता है। समूह के नेतृत्व की क्षमता भी इसकी स्वाभाविक परिणति रहती है। इसके साथ आध्यात्मिक विकास महत्त्वपूर्ण है, जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

आज आध्यात्मिक आवश्यकता वैज्ञानिक रूप से पुष्ट तथ्य है। अस्तित्व के गहनतम प्रश्नों के उत्तर अध्यात्म में ही निहित हैं। जीवन-मृत्यु के पार अस्तित्व का शाश्वत दर्शन इसी के गर्भ से प्रस्फुटित होता है, जीवन के सकल प्रश्नों के समाधान इसी के आधार पर संभव होते हैं।

जीव, जगत् और ईश्वर के बीच के अर्थपूर्ण संबंध इसी के इर्द-गिर्द स्पष्ट होते हैं और जीवन तमाम विरोधाभासों के बीच एक सुमधुर तराना बनकर उभरता है।

निस्संदेह रूप में इन सबका आधार स्वस्थ शरीर एवं निरोगी काया रहते हैं, जिसके लिए हर व्यक्ति को नियमित रूप से सचेष्ट प्रयासरत रहना चाहिए। साररूप में आत्मचिंतन, आत्मसुधार, आत्मनिर्माण और आत्मविकास की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए जीवन के हर क्षेत्र को परिमार्जित, परिशोधित एवं संवर्द्धित करते हुए पात्रता के विकास के साथ आत्मोत्कर्ष एवं उत्थान का मार्ग प्रशस्त होता है।

आत्मदेव की साधना के साथ उपासना की सार्थकता और सेवा-आराधना का महत्त्व हृदयंगम होता है। ये सब मिलकर सुरदुर्लभ मनुष्य जीवन की धन्यता के भाव को घनीभूत करते हैं और इस प्रकार बहुमूल्य मानव जीवन का उद्देश्य पूर्ण होता हुआ प्रतीत होता है। ❑

एक बार की बात है कि असुरों ने देवताओं पर आक्रमण कर दिया। ब्रह्माजी देवताओं से बोले—"तुमने असंयम के कारण अपनी सामर्थ्य गँवा दी है। महाराज मुचकुंद मनुष्य होने के बावजूद भी सेनापति पद के उपयुक्त हैं; क्योंकि उन्होंने संयम व पराक्रम में देवों को भी पीछे छोड़ दिया है। अतः उनके सेनापतित्व में ही तुम्हारी विजय संभव है।"

महाराज मुचकुंद की अगुवाई में युद्ध आरंभ हुआ। मुचकुंद का पुण्य बहुत था, असुर उनके सामने धराशायी होते चले। चारों ओर उनकी जय-जयकार होने लगी। यह सुनकर मुचकुंद का अहंकार जाग्रत हो गया। उनके मन में अहं को पनपते देख ब्रह्माजी को चिंता हुई और उन्होंने इंद्रदेव को बुलाकर कार्तिकेय को सेनापति पद प्रदान करने को कहा।

ब्रह्माजी की चिंता सही निकली; क्योंकि अहंकार बढ़ते ही मुचकुंद की जीवनशैली बदल गई। वे चाटुकारों से घिर गए एवं अपनी शक्ति व्यर्थ के कार्यों में नष्ट करने लगे। कार्तिकेय के सैन्य संचालन में देवता विजयी बने, परंतु मुचकुंद अपनी शक्ति खोकर धरती पर जा गिरे। तब जाकर उन्हें अपनी भूल का भान हुआ।

निराश-हताश वे ब्रह्माजी के पास पहुँचे तो ब्रह्माजी बोले—"वत्स! तुम्हारी साधना अधूरी रह गई थी, यह उसी का परिणाम है। अब फिर से तपस्या आरंभ करो, संयमित जीवन व्यतीत करो, पर शक्ति प्राप्त होने पर अहंकार को स्थान न देना।" अहंकार ही पतन का कारण बनता है।

स्वधर्म एवं युग-परिवर्तन

स्वधर्म एवं धर्मयुद्ध, दो ऐसे शब्द हैं, जिनमें गीता के व्यावहारिक जीवन दर्शन का सार छिपा हुआ है। एक जीवन में मौलिक लक्ष्य की खोज की पैरवी करता है, तो दूसरा अपने कर्त्तव्य-पथ पर आरूढ़ रहकर धर्म की स्थापना के मर्म का प्रतिपादन करता है।

इस तरह जीवन में सत्य की खोज और धर्म की स्थापना, ये किसी भी व्यक्ति के जीवन के ध्येय बन जाते हैं और फिर जो सही है, उसे जीवन में धारण करना गायत्री महामंत्र का सार भी है, जो व्यक्ति के जीवन का आवश्यक परिमार्जन-परिष्कार करते हुए जीवन के उत्कर्ष को साधता है तथा सामूहिक जीवन में औचित्य की स्थापना संभव करता है।

स्वधर्म की खोज का अर्थ है, अपने स्वभाव, रुचि के अनुरूप जीवन लक्ष्य का निर्धारण और अपने कर्त्तव्य-पथ का अनुसरण। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को सबसे पहले स्वधर्म की खोज का उपदेश देते हैं। अपने आत्मस्वरूप का बोध जिसका प्राथमिक चरण है। इस कारण स्वधर्म की खोज उतनी सरल भी नहीं, यह थोड़ा समय एवं पुरुषार्थ की माँग करती है। इसके लिए जीवन का समग्र मंथन करते हुए नित्य गहन आत्मउत्खनन एवं ईमानदार आत्मसमीक्षा से गुजरना पड़ता है, अपने आत्मस्वरूप का शोधन करना पड़ता है।

जीवन के सबसे बहुमूल्य पलों का इसमें नियोजन करना पड़ता है। जीवात्मा के पुरुषार्थ के चरम पर ईश्वरीय कृपा, गुरुकृपा के रूप में प्रकट होती है तथा अभीप्सु जीवात्मा को आवश्यक मार्गदर्शन कराती है और व्यक्ति का स्वधर्म प्रकाशित होता है।

जिसने अपना स्वधर्म खोज लिया, समझो उसने जीवन का आधा युद्ध जीत लिया। धर्मयुद्ध इसका उत्तरार्द्ध है, जो व्यक्ति के आंतरिक और बाह्य दोनों जीवन में घटित होता है। आंतरिक देवासुर संग्राम की रोमांचक एवं लोमहर्षक प्रक्रिया का साक्षी बनते हुए जीवात्मा अपने जन्म-जन्मांतरों के कुसंस्कारों के विस्फोट के मध्य, अपने पापकर्मों का क्षय होते देखती है। हर संत, सुधारक एवं यति, योगी इस आग्नेय प्रक्रिया में कुंदन बनकर बाहर निकलते हैं और सही अर्थों में बाह्य जीवन में धर्मयुद्ध के संवाहक बनते हैं।

बाह्य जीवन में धर्मयुद्ध को युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने बहुत ही सुंदर रूप में परिभाषित किया है, जो युग निर्माण आंदोलन का सार भी है। वे लिखते हैं कि असुरता के विरुद्ध विवेक की प्रतिक्रिया का नाम ही युग निर्माण आंदोलन है। यह शिवसंकल्प से युक्त बाह्याभ्यंतर प्रतिक्रिया ही जीवन में धर्मयुद्ध का सार है। सत्य, न्याय, धर्म, मानवता एवं औचित्य के पक्ष में मोर्चे के सिपाही की भाँति डटे रहना ही धर्मयुद्ध में भागीदारी होना है।

यदि हम किसी भी रूप में इनसे समझौता कर रहे हैं तो हम धर्म का हिस्सा नहीं। हम अधर्म को बढ़ावा दे रहे हैं, अंधकार की शक्तियों को प्रश्रय दे रहे हैं और समाधान के बजाय समस्या का हिस्सा बन रहे हैं। **'हम बदलेंगे—युग बदलेगा'** और **'हम सुधरेंगे—युग सुधरेगा'** के उद्घोष धर्मयुद्ध के व्यावहारिक सूत्र हैं और अपने परिकर में युग-परिवर्तन इनकी सहज-स्वाभाविक परिणति है। ❑

भगत सिंह : क्रांति की अमर पुकार

जिस यौवन में हम सभी जीवन की दिशा तय करने के बारे में सोच-विचार करते हैं, उसमें कोई मतवाला अपना सर्वस्व लुटा देने को तत्पर होता है। आज जब सारा देश जानता है कि भगत सिंह कितने अद्‌भुत क्रांतिकारी थे, हमें उनकी स्मृति को दोहराने की आवश्यकता है। इतिहास के उन पन्नों को टटोला जाए तो हम ऐसा समय पाएँगे, जब ऐसे वीर सपूतों ने बिना परवाह किए भारतमाता को उसका यश प्रदान किया।

जेल के इनके दिन कितने मार्मिक थे, इसे कोई भी संवेदनशील व्यक्ति समझ सकता था। अँगरेजों के कठोर कारावास को सहते हुए भूख हड़ताल, निरंतर अध्ययन एवं लेखन में व्यस्त रहना तथा अंतिम श्वास तक अपने विचारों को फैलाने हेतु तत्पर इस महान आत्मा ने हमें कृतार्थ किया है। अन्य कैदी मुरझा गए, कइयों ने समर्पण कर दिया, पर ये डटे रहे। ऐसी कौन-सी शक्ति थी इनमें? बचपन से उनमें वैसे संस्कार डाले गए थे, जो बड़े होकर यह रूप ले सके।

स्वतंत्रता आंदोलन में अग्रिम भूमिका निभाने की प्रेरणा उन्हें अपने चाचा एवं पिता से मिली जिन्होंने संघर्ष का बिगुल बजाया था। जलियाँवाला बाग हत्याकांड ने इनके मन पर ऐसा प्रभाव डाला कि वहाँ की राख घर लाकर प्रतिज्ञा ली कि जब तक विदेशी दासता को समाप्त न करूँगा, तब तक चैन न लूँगा।

हमें यह ज्ञात हो कि कितनी कम आयु में एक प्रतिष्ठित विद्वान बनकर तथा साथियों के नेता बनकर उन्होंने ख्याति प्राप्त की। कॉलेज में इनके जैसा मेधावी छात्र कोई नहीं था तथा रूस एवं फ्रांस की क्रांति से प्रेरित होकर वे भारत में भी वैसा ही परिवर्तन चाहते थे। भगत सिंह चहुँओर पीड़ा एवं पतन को देखते थे और सोचते थे कि भारत की दुर्दशा तभी मिट सकेगी, जब भारतीय जागरूक होंगे।

इसके लिए उन्होंने वह सब किया, जो उन परिस्थितियों में उन्हें अपरिहार्य लगा। यदि साहस एवं दृढ़ता की बात करें तो हमारी पीढ़ी निश्चित ही भगत सिंह के उदाहरण से सीख सकती है। जिस लक्ष्य के लिए वे लगे उसका पूरा होना असंभव नहीं, परंतु कठिन अवश्य था। 200 वर्षों तक तपते-

जो उमंग, उत्साह, जोश से जीता व सुनहरे भविष्य के सपने देखता है, वही युवा है।

जलते बहुत देर हो गई थी तथा किसी भी प्रकार के विद्रोह को भड़काया जाना आवश्यक हो चला था। ऐसे में अपनी प्राणाहुति द्वारा व्यापक लोकमत सुगठित हो सके, यह ईश्वरीय पुकार उन्होंने स्वीकारी।

कितने विलक्षण थे वे, कहाँ से आई उनमें मुक्ति सदृश भावना। कौन बना गया उन्हें पराक्रमी? उत्तर यही मिलता है कि जब अन्याय और असुरता चरम पर होते हैं, तब सच्चे वीर पीछे नहीं हटते। आज पुनः घर-घर, गाँव, कस्बे, शहर भगत सिंह चाहिए—तभी समाज की स्थिति सुधरेगी। नशा, अपराध, भेद दृष्टि, त्याग-उत्सर्ग का अभाव जिस तेजी से बढ़ रहे हैं, उसे रोकना होगा। ये तब होगा, जब हमारे भीतर शक्ति जगे, पूर्वजों का आशीर्वाद हमें मिले तथा हम राष्ट्र के उद्धार हेतु संकल्पित हो सकें। ❑

आत्मकल्याण का उत्तम मार्ग

एक बार शुकदेव जी अपने पिता महर्षि वेद व्यास से आज्ञा प्राप्त कर तप करने की इच्छा से तपोवन चले गए। उसी समय भगवदिच्छास्वरूप देवर्षि नारद उनके पास पहुँचे। देवर्षि नारद को देखकर शुकदेव उनका सम्मान करने के लिए उठ खड़े हुए और यथाविधि उनका पूजन किया।

देवर्षि नारद जब आसन पर आसीन हो गए तब उन्होंने प्रसन्न होकर शुकदेव जी से कहा—"वत्स! तुम्हारी क्या इच्छा है? मैं तुम्हें क्या उपदेश दूँ, जिससे तुम्हारी इच्छा के अनुसार तुम्हारा कल्याण हो।"

देवर्षि नारद के इन मधुर वचनों को सुनकर शुकदेव जी बोले—"भगवन्! इस मर्त्यलोक में मनुष्यमात्र के कल्याण के लिए सर्वोपरि, सर्वश्रेष्ठ और परम हितकर उपदेश कौन-सा है?" तब देवर्षि नारद ने कहा—"वत्स! तुमने जो प्रश्न किया है, यही प्रश्न प्राचीनकाल में ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि तथा अन्यान्य महापुरुषों की एक सभा में किया गया था। उस समय इस प्रश्न का जो उत्तर ब्रह्मर्षि सनत्कुमार ने दिया था और जिसको सभा में उपस्थित सभी लोगों ने बड़ी श्रद्धा व भक्ति के साथ सुना था, वही हम तुमसे कहते हैं।"

देवर्षि नारद ने फिर कहा—"सनत्कुमार ने कहा था कि विद्या के समान संसार में कोई नेत्र नहीं है। सूर्य का प्रकाश भी विद्याचक्षु के प्रकाश से कम है। सत्य पालन के समान कोई तप नहीं है। राग के समान संसार में दुःख का अन्य कोई कारण नहीं है। राग ही सबसे बढ़कर दुःख देने वाला है और त्याग के समान सुखदाता कोई नहीं है। त्याग ही सबसे बढ़कर सुखप्रद है।"

उन्होंने आगे कहा—"वत्स! हिंसा, असत्य, छल, कपट, चोरी, व्यभिचार आदि दुःखदायी पाप कर्मों से बचना और निरंतर पुण्यप्रद कर्मों में निरत रहना और स्वधर्म का पालन करना ही मनुष्य के कल्याण का श्रेष्ठ मार्ग है। हे वत्स! मानव शरीर को पाकर काम, क्रोध, लोभ आदि दुःखदायी विषयों में आसक्त होकर जो मनुष्य धर्म के मार्ग से च्युत हो जाता है, उसकी बुद्धि मोह जाल में फँसकर नष्ट हो जाती है। अतः वह दुःख पाता है; क्योंकि विषयों का संग ही तो दुःख का लक्षण है।"

आगे वे बोले—"जो मनुष्य स्त्री, पुरुष, संतान, धनादि में आसक्त है, उसकी बुद्धि मोहजाल में फँसकर भ्रष्ट हो जाती है, जिससे वह मनुष्य धर्मभ्रष्ट हो जाता है और वह बुरे कर्मों, पाप कर्मों में लिप्त होकर अपने लिए दुःख का द्वार स्वयं ही खोल लेता है; अस्तु भगवद्भजन, स्मरण, सुमिरण, स्वाध्याय, भगवद्ध्यान, वैराग्य, भगवद्भक्ति के निरंतर अभ्यास से बुद्धि को पवित्र करना चाहिए और इसके निरंतर अभ्यास के द्वारा काम, क्रोधादि मनोविकारों की वासनाओं को नष्ट कर देना ही दुःख से मुक्त होने का सर्वोत्तम उपाय है।"

देवर्षि नारद ने अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कहा—"वत्स! प्राणिमात्र को पीड़ा न पहुँचाना और मनुष्यमात्र का उपकार करना ही सर्वोत्तम धर्म है। जो मनुष्य, मनुष्यादि किसी भी प्राणी को पीड़ा पहुँचाता है, उसके द्वारा किए गए समस्त धर्मानुष्ठान

भी सर्वथा व्यर्थ हैं। आत्मा को जीत लेना ही सबसे बड़ा ज्ञान है, किंतु सत्य से बढ़कर अन्य कोई धर्म नहीं है; क्योंकि परमात्मा स्वयं सत्यस्वरूप हैं। अस्तु मन, वचन और कर्म से सत्यनिष्ठ होना, सत्य का पालन करना हर दृष्टि से कल्याणकारी है किंतु यह समझना भी आवश्यक है कि जो किसी प्राणी के लिए हितकर वचन है, वही सत्य है और जो वचन प्रत्यक्ष में सत्य प्रतीत होता हो, किंतु जो वास्तव में प्राणियों के लिए हितकर नहीं, वह सत्याभास अर्थात असत्य वचन है।''

देवर्षि ने आगे कहा—''परमार्थी और धर्मनिष्ठ मनुष्य को चाहिए कि वह समस्त कर्मों को परमात्मा को अर्पित करता रहे, और कर्मों के फलों की चिंता न करके अपना कर्त्तव्य कर्म करता रहे। जो सांसारिक भोगों में आसक्त व रागी है, वह मूर्ख है; जो उसमें आसक्त नहीं, अनासक्त है, वह विद्वान और पंडित है और संसार के बंधनों से छूटकर, बहुत ही थोड़े काल में परम कल्याण को प्राप्त करेगा। हे वत्स! यदि तुम सर्वोपरि कल्याण चाहते हो तो अनासक्त बनो, जितेंद्रिय बनो और जन्म-जन्मांतरों में निर्भय कर देने वाले शोकनाशक ज्ञानमार्ग पर आरूढ़ हो जाओ।''

उन्होंने आगे कहा—''हे सौम्य शुकदेव! तुम भोगों का त्याग करके ही सांसारिक दुःखों और तापों से छूट सकते हो। जिस प्रकार एकात्मदर्शी पुरुष के शोक और मोह निवृत्त हो जाते हैं, उसी प्रकार वैराग्य उत्पन्न होने पर भी शोक और मोह की निवृत्ति हो जाती है और यही उत्तम सुख है और यही कल्याण का उत्तम मार्ग है।''

आगे उन्होंने कहा—''मन को परमात्मचिंतन, ब्रह्मचिंतन, भगवद्भजन, भगवद्ध्यान में लगाए रहने से मनुष्य को अविलंब आत्मिक सुख मिलता है और वह सुख-दुःख, हानि-लाभ, मान-अपमान, हर्ष-शोक आदि द्वंद्वों में भी उनसे रहित होकर, समत्व की स्थिति में होकर विचरण करता है। ऐसे मनुष्य को तुम तृप्त हुआ जानो।''

देवर्षि ने कहा—''ज्ञानतृप्त और भगवत्परायण मनुष्य का यही लक्षण है कि वह हर्ष-शोक से रहित होकर सदैव आत्मिक आनंद की अनुभूति करता है। शुभ और पुण्यप्रद कर्मों के करने से और ऐसे कर्मों की अधिकता से जीव को देवयोनि प्राप्त होती है। जब पाप और पुण्य समान होते हैं, तब प्राणी को मानव शरीर मिलता है।''

उन्होंने आगे कहा—''अशुभ अथवा पाप-कर्मों के बढ़ जाने से प्राणी को पशु आदि नारकीय योनियों में जन्म लेना पड़ता है, पर जो पुरुष शुभ और पुण्य कर्मों को करते हुए भी उनके परिणाम अथवा फल में आसक्ति नहीं रखते और अपने समस्त कर्मों को भगवान को अर्पित करते जाते हैं—उनके कर्म भी अकर्म होते हैं और वे कर्म संस्कार के बंधन से मुक्त हो आत्मिक सुख और भगवत्प्राप्ति कर पाते हैं। अस्तु हे वत्स! सांसारिक माया-मोह में न पड़कर भगवत्परायण होना ही आत्मकल्याण व मनुष्य मात्र के कल्याण का उत्तम मार्ग है।''

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

अर्थात सभी सुखी रहें, सभी रोगमुक्त रहें। सभी शुभ देखें, कोई भी दुःख का भागी न बने।

इस प्रकार श्री शुकदेव जी को ज्ञानोपदेश कर देवर्षि नारद वहाँ से अन्यत्र चल पड़े। देवर्षि नारद का यह ज्ञानोपदेश परम कल्याणकारी, हितकारी और मंगलकारी है। हम सबको भी इस उत्तम मार्ग पर अविलंब चल पड़ना चाहिए। ❑

बल की उपासना करें

आज बलवान होना जीवन की विलासिता नहीं, बल्कि आवश्यकता है। जीवन का कटु यथार्थ हर व्यक्ति से अपेक्षा करता है कि वह हर रूप में बलवान बने। शरीर से सबल, मन से सशक्त, बौद्धिक रूप से प्रखर, भावनात्मक रूप से सुदृढ़-परिपक्व, नैतिक एवं सामाजिक रूप से सुगठित, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर तथा आध्यात्मिक रूप से आत्मबल संपन्न। यह सूत्र भी प्रख्यात है कि **'वीर भोग्या वसुन्धरा'**। यह संसार साहसी लोगों के लिए है, वीर पराक्रमियों के लिए है।

जंगल में शेर इसी अवस्था में विचरण करता है, जिसमें उसका बल, साहस और वर्चस्व प्रभावी रहता है। दूसरे जीव भी इसकी छत्रछाया में अपने बल के आधार पर ही स्वच्छंद रूप में विचरण करते हैं। जबकि दुर्बल एवं निर्बल जीव दबे, छिपे किसी तरह अपना जीवनयापन करते देखे जाते हैं।

स्वामी विवेकानंद के आग्नेय शब्द यहाँ विचारणीय हैं, जो कहते हैं कि बल ही जीवन है और दुर्बलता मृत्यु। मैं एक ही प्रश्न पूछता हूँ कि क्या आप बलवान अनुभव करते हो। यदि नहीं तो इसी समय इसके अर्जन में लग जाओ। शरीर को मजबूत बनाओ।

इसके लिए वे गीता पढ़ने की अपेक्षा फुटबाल तक को खेलने की हिदायत देते थे। उनका मानना था कि एक दुर्बल शरीर गीता के माहात्म्य को सही ढंग से नहीं समझ सकता, जबकि अधिक बलिष्ठ मांसपेशियों के साथ एक सबल व्यक्ति गीता के मर्म को अधिक गहराई के साथ हृदयंगम कर सकेगा।

स्वामी जी का तो यहाँ तक कहना था कि उन चीजों को अपने पैरों तक से भी मत छुओ, जो आपको शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक रूप से दुर्बल बनाती हों। प्रकारांतर में यह युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव द्वारा बताई गई जीवन-साधना का पर्याय है, जिसमें वे इंद्रिय संयम, समय संयम, विचार संयम और अर्थ संयम के माध्यम से जीवन को बाह्य-आभ्यांतर रूप से सबल-सशक्त बनाने की बात करते हैं।

शिष्य का प्रश्न था—"श्रद्धा व वैराग्य की साधक के जीवन में क्या भूमिका है?" गुरु ने सारगर्भित उत्तर दिया—"श्रद्धा के बिना भक्ति दृढ़ नहीं होती और वैराग्य के बिना वेदांत अनुभवगम्य नहीं होता। जब ईश्वर के ऐश्वर्य से भी वैराग्य हो जाए, तब सच्चा वेदांत जीवन में उतरता है।"

हमारा पावन कर्त्तव्य बनता है कि नित्यप्रति समग्र रूप में स्वयं को सशक्त, सबल एवं सुदृढ़ बनाने का नैष्ठिक प्रयास करें। इसे दिनचर्या का हिस्सा बनाएँ।

परमपूज्य गुरुदेव के बताए प्रज्ञायोग में इन सभी तत्त्वों का समावेश है। प्रज्ञा योगासनों के साथ नित्य प्रातः उठते ही आत्मबोध एवं रात्रि सोते समय तत्त्वबोध का अभ्यास करें और दिन भर संयम, स्वाध्याय, सेवा एवं साधना के उपक्रमों को अपनाते हुए अपने सर्वांगीण विकास एवं सशक्तीकरण के पथ पर अग्रसर हों। ❑

ब्रह्मविद्या की महान परिणति

जिसे व्यक्तित्व का रूपांतरण कहते हैं, समूचे कषाय-कल्मषों की निवृत्ति एवं हर प्रकार से उन्नत-सुसभ्य बनने की कला—वह एक ही है। उसका नाम है ब्रह्मविद्या।

ऐसा इसलिए, क्योंकि जिस चिंतन को विकसित करने से व्यक्ति महामानव बन जाता है; जिस प्रणाली के द्वारा उसका समूचा विकास एवं जीवन का दिशाक्रम एक सार्थक-सुफल दिशा की ओर होने लगता है, वही वास्तव में भीतर की जाग्रति एवं तदनुरूप व्यवहार क्रम का द्योतक है।

हम जब तक स्वयं को नहीं जानेंगे, तब तक आत्मपरिष्कार कर आगे बढ़ने की नीति पर कैसे चल पाएँगे? हमारा जीवन धन्य तभी बनेगा, जब हमें उस महान अवलंबन का स्वरूप प्राप्त हो जो कि व्यक्तित्व को असाधारण कोटि की प्रतिभा एवं गुण-गरिमा से निहाल कर देता है। यही केंद्रीय परिवर्तन है। इसके लिए स्वयं के आत्मनिरीक्षण द्वारा स्वयं की वृत्तियों के परिशोधन एवं तदुपरांत स्वयं को जागरूक कर, जीवन के समग्र रूपांतरण की दिशा में बढ़ना होता है।

आत्मपरिष्कार की क्रिया धैर्य और संकल्प माँगती है, उसके बिना व्यक्तित्व का समग्र विकास संभव नहीं। हम कुछ भी कर लें, परंतु यदि हममें स्वयं के आत्मविकास हेतु आवश्यक नीति एवं विचार-संपदा नहीं है, हमारा जीवन कभी भी उस उत्कर्ष को प्राप्त नहीं कर सकता है, जिसका कि वह लाभार्थी है। इसके लिए स्वयं को ऐसा बनाना पड़ता है, ताकि प्रत्येक गतिविधि में वह समरसता एवं प्रकाशपूर्ण नीतिमत्ता झलक सके, जिसे कि योगीजन स्वीकारा करते हैं।

हम ऐसा तभी कर पाएँगे, जब हमें अंतरात्मा के विकासक्रम एवं महान ज्योति-पथ का भान होगा। तब हम उसे देख सकेंगे, जो कि समूचे जीवन का नियंता एवं पारदर्शी दृष्टिकोण का प्रदाता है। उसे ही सत्य एवं व्यवहार में संपूर्ण गुण-वैभव से परिपूर्ण आदर्शवादिता कहेंगे।

हम जब इसे समझ लेते हैं, स्वयं को जागरूक कर आत्मविकास के पथ पर बढ़ चलते हैं, तभी यह संभव है कि भीतर की जाग्रति हमें उत्कर्ष एवं महानता प्रदान करे। पूछा जाए तो ब्रह्मविद्या इसी का नाम है।

अब हम यह समझते हैं कि जिस ब्रह्मविद्या को हमने उद्घाटित किया वह वास्तव में जीवन के कार्य-व्यापार के अनुकूल किस प्रकार ढलती है, उससे विवेक की प्राप्ति एवं उसके परिणामस्वरूप व्यवहारकुशलता कैसे प्राप्त होती है? यही ब्रह्म विद्या का विषय है।

जब इंद्रियातीत अनुभव से गुजरकर वर्तमान जगत् के परिप्रेक्ष्य में सोचा जाता है, जब स्वयं के भीतर विराजित परमात्मसत्ता के दिव्य आशीष में हर पल सँवरता एवं विस्तृत होता देखा जाता है, जब प्रत्येक गतिविधि में उसे ही स्वीकार आगे बढ़ा जाता है तो ही यह संभव है कि व्यक्तित्व का विकास एक आदर्श दृष्टिकोण के अनुसार होने लगे, जीवन रूपांतरित होकर महान अनुदान प्रदान करने लगे।

इसके लिए इंद्रियों से विषयासक्ति त्यागनी होगी, स्वयं को अंतरात्मा के दिव्य निर्देशों को सौंपना होगा एवं तदुपरांत स्वयं के सच्चे हित की दिशा में बढ़ने की ठाननी होगी।

यह जीवन तभी संफल होगा जब हम व्यर्थ के विषयों को त्याग दें, उन्हें अपने भीतर प्रविष्ट न होने दें तथा व्यवहार क्रम को ऐसा रखें, जो कि आदर्श एवं अनुपम कहलाए। इसके लिए प्रार्थना करिए कि हम कभी भी अपने पथ की गरिमा एवं उच्च उत्तरदायित्व युक्त प्रतिभा-कौशल से समझौता नहीं करेंगे, स्वयं को ऐसा बनाएँगे, ताकि अंतरात्मा हर परिस्थिति में निश्चित एवं शुभ मार्गगामी बने। यही उसका विकास-पथ है एवं उसके संकल्प की सिद्धि भी। आप ब्रह्म के समतुल्य बनिए, उसे अपनी गतिविधि में संचरित होने दीजिए एवं अपने आदर्श निर्माण हेतु उसकी महत्ता को स्वीकार कीजिए। यही इस बहुमूल्य ब्रह्मविद्या की महती उपयोगिता है। ❑

जापान में नानहेन नामक एक परम ज्ञानी फकीर थे। एक दिन एक व्यक्ति उनके पास पहुँचकर बोला—"मैं संन्यास लेना चाहता हूँ। इसके लिए मैंने अपने घर-परिवार, रिश्ते-नाते सबको तिलांजलि दे दी है।" फकीर ने पूछा—"क्या तुम सचमुच बिलकुल अकेले हो?" व्यक्ति बोला—"हाँ, आप देख लीजिए।"

फकीर बोले—"जाओ, सामने वटवृक्ष की छाया में बैठकर कुछ देर आँखें बंद करके अपने अंदर देखो कि कहीं तुम्हारे भीतर कोई और तो नहीं।" वह व्यक्ति वृक्ष की छाया में बैठकर अपने मन में देखने लगा तो उसमें उसे पूरे परिवार की छवि दिखाई दी।

उस व्यक्ति ने घबराकर आँखें खोल दीं। उसने फकीर को सामने खड़ा पाया। व्यक्ति फकीर से बोला—"मैं सब पीछे छोड़ आया था, पर मेरे भीतर तो सबकी छवि घूम रही है।" इस पर फकीर बोले—"ध्यानमग्न होकर इन व्यक्तियों को अपने अंदर से निकालने का प्रयत्न करो। कुछ देर बाद मेरे पास आना।"

युवक ने कुछ समय बाद फकीर का दरवाजा खटखटाया तो फकीर बोले—"कौन है?" युवक बोला—"मैं हूँ।" फकीर बोले—"अभी भी तुम अकेले नहीं हो। तुम्हारा 'मैं' तुम्हारे साथ है। यदि तुम इस मैं और भीड़ को छोड़ सको तो फिर संन्यास की जरूरत नहीं रह जाएगी।" व्यक्ति ने फकीर की बात समझ ली।

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब

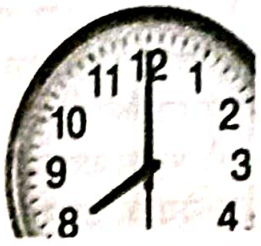

समय एक बहुत बड़ी संपदा है। समय के सदुपयोग से व्यक्ति जहाँ जीवन के हर क्षेत्र में सफलता और सिद्धि को प्राप्त कर सकता है, वहीं समय के दुरुपयोग अथवा आलस्य, अकर्मण्यता में समय को खराब करने से व्यक्ति को हर क्षेत्र में असफलता ही हाथ लगती है और असफलता से जीवन निराशा और दुःख से भर जाता है।

जो किसान समय पर खेत में बीज बोता है उसके खेत में फसल लहलहा उठती है, पर जो किसान आलस्य, प्रमाद, अकर्मण्यता के कारण समय पर बीज नहीं बोता, उसका खेत वीरान हो जाता है।

जो विद्यार्थी, विद्यार्थी जीवन में समय के हर पल का, हर क्षण का सदुपयोग करता है। समय पर अध्ययन, श्रम करता है वह परीक्षा में अच्छे अथवा सर्वोच्च अंकों से उत्तीर्ण होता है, पर जो विद्यार्थी समय पर श्रम नहीं करता, उसे असफलता ही हाथ लगती है।

एक खिलाड़ी जब समय पर अपने समय का उपयोग खेलने में, खेल की बारीकियों को सीखने में लगाता है तो वही एक दिन अच्छा खिलाड़ी अथवा सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी बन पाता है और यही नियम शिक्षा, चिकित्सा, अंतरिक्ष, विज्ञान, राजनीति आदि सभी क्षेत्रों में सफलता पाने के लिए लागू होता है।

आज संसार में ऐसे अगणित लोग हैं, जो अपने वर्तमान समय का सदुपयोग करने के कारण अपने बड़े सपनों को पूरा कर सके और अच्छे खिलाड़ी, चिकित्सक, व्यापारी, अध्यापक, अभियंता, अभिनेता, नेता आदि बन सके और वे अपने को सफल बनाकर समाज निर्माण में अहम भूमिका निभाने का सुख एवं गौरव प्राप्त कर सके।

वहीं संसार में ऐसे अगणित लोग हैं जो अपने वर्तमान का सदुपयोग नहीं कर पाने के कारण, वर्तमान समय के महत्त्व को नहीं समझ पाने के कारण अपने सपनों को पूरा नहीं कर पाने का दुःख-दंश झेल रहे हैं।

उनके मन में यह बात अनायास ही आती है कि काश! यदि हम भी अपने समय का सदुपयोग कर पाते, अपने वर्तमान के पल-पल का उपयोग अपने सपनों को पूरा करने में लगा पाते, सही दिशा में श्रम, साधन, पुरुषार्थ, पराक्रम करते तो आज हम भी उद्योगपति होते, अधिकारी होते, व्यापारी होते, अभियंता होते, अभिनेता होते, नेता होते, वैज्ञानिक होते, चिकित्सक होते, अच्छे साधक होते और साधना के क्षेत्र में अच्छी स्थिति में होते आदि। पर अब क्या?

समय तो अब भी है, पर अब समय बीज बोने का नहीं रहा। अब समय फसल काटने का आ चला। फसल काटने का समय भला बीज बोने का समय कैसे हो सकता है? इसलिए तो कहा गया है **'का वर्षा जब कृषि सुखाने', 'अब पछताये होत क्या, जब चिड़िया चुग गईं खेत।'**

हमारे आलस्य, प्रमाद व अकर्मण्यता ने हमारे वर्तमान को बरबाद कर दिया और जिसका वर्तमान व्यर्थ गया, उसका भविष्य भला सुंदर कैसे हो सकता

है; क्योंकि सुंदर वर्तमान ही तो सुंदर भविष्य का सृजक है। हम समय को बरबाद कर मात्र समय ही बरबाद नहीं करते, बल्कि स्वयं को, स्वयं के जीवन को भी बरबाद कर देते हैं; क्योंकि युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव के अनुसार—जीवन का अर्थ ही समय है।

जिसने समय बरबाद किया, उसने मानो जीवन को ही बरबाद कर दिया। अपने सुंदर वर्तमान और सुंदर वर्तमान से सृजित होने वाले सुंदर भविष्य को भी बरबाद कर दिया। अस्तु जो जीवन से प्यार करते हैं, वे आलस्य में समय न गँवाएँ। अँगरेजी के महान साहित्यकार शेक्सपीयर ने ठीक ही कहा है कि 'इफ यू किल टाइम दि टाइम विल किल यू।' अर्थात 'जो समय को बरबाद करता है, समय उसे बरबाद कर देता है।'

वर्तमान समय के सदुपयोग से ही कोई साधक साधना में सिद्धि को प्राप्त करता है। वह नियमित उपासना, साधना, आराधना, स्वाध्याय, सेवा के द्वारा चित्तशुद्धि को प्राप्त कर ब्रह्म साक्षात्कार, भगवत्प्राप्ति कर अपने जीवन को धन्य-धन्य कर लेता है। संसार में जीवन के हर क्षेत्र में वे लोग ही सफल हुए हैं, जिन्होंने अपने समय का, वर्तमान समय का नियोजन पराक्रम, पुरुषार्थ, श्रम, साधन में लगाया।

महात्मा गांधी भी समय को बहुत मूल्यवान कहा करते थे। दांडी यात्रा के समय की बात है। गांधी जी तेज-तेज चलते जा रहे थे। उनका ध्यान लक्ष्य की ओर था। सभी के बहुत आग्रह करने पर वे थोड़ी देर के लिए एक स्थान पर रुक गए। तभी एक अँगरेज व्यक्ति उनसे मिलने आया। गांधी जी को देखकर वह बोला—"हैलो मिस्टर गांधी! मेरा नाम वाकर है।"

गांधी जी बोले—"आप वाकर हैं, तो मैं भी वाकर (सदैव चलते रहने वाला) हूँ।" प्रत्युत्तर में इतना कहकर वे अपनी यात्रा पर आगे चल पड़े। तभी एक व्यक्ति उनके पास आया और बोला—"आपको उनसे मिल लेना चाहिए था। पता है वे कौन थे? अगर आपका नाम तमाम अखबारों में उनके साथ छपता तो आप प्रसिद्ध हो जाते।"

गांधी जी ने प्रत्युत्तर में कहा—"मेरे लिए प्रसिद्धि से अधिक कीमती मेरा समय है।" जब व्यक्ति समय के मूल्य को समझ लेता है, पहचान लेता है तभी वह अपने समय का, वर्तमान समय का सदुपयोग कर पाता है। समय किसी का दास नहीं। वह अपनी गति से चलता जाता है, बहता जाता है। जो समय के प्रवाह में प्रवाहित होता रहता है अर्थात पल-पल पराक्रम, पुरुषार्थ में लगाता जाता है, उसे दुनिया की कोई भी ताकत मंजिल पाने से रोक नहीं सकती। उसे उसकी मंजिल मिल कर रहती है।

प्रायः हम या तो अतीत की अच्छी-बुरी, खट्टी-मीठी स्मृतियों में, यादों में खोए रहते हैं या आने वाले समय की कल्पना में रमे रहते हैं या यह सोचते रहते हैं कि अभी बहुत समय है, हम फलाँ काम थोड़ी देर बाद कर लेंगे और इस प्रकार काम को टालते-टालते हम अपने वर्तमान समय को अपने हाथ से निकल जाने देते हैं, सुअवसर को हाथ से निकल जाने देते हैं। यह वास्तव में समय की उपेक्षा है; क्योंकि वर्तमान ही हमारे हाथ में है।

हमारे हाथ में न तो अतीत है न ही भविष्य अस्तु वर्तमान ही वास्तविक समय है। जिन्होंने इसे समझ लिया, पहचान लिया तो फिर वे न तो आलस्य, प्रमाद में समय बरबाद कर सकेंगे, न ही वर्तमान को हाथ से निकल जाने देंगे। वर्तमान समय की महत्ता को स्पष्ट करते हुए संत कबीर ने बड़ा सटीक व सुंदर कहा है—

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में परलय होयगी, बहुरि करेगा कब॥

अर्थात कल्याण साधना के कार्य जो कल करने हैं, उन्हें आज कर लो। जो आज करना है, उसे अभी कर लो। पता नहीं पल भर में क्या हो जाए। फिर कब करोगे।

हम धर्म-अध्यात्म, शिक्षा, चिकित्सा, खेल, उद्योग, व्यापार, कृषि, विज्ञान आदि किसी भी क्षेत्र में सफलता के शिखर तक पहुँचने के बड़े-बड़े सपने देखें, यह अनिवार्य है; क्योंकि आपका सपना ही आपका लक्ष्य बनता है और लक्ष्य निर्धारण आवश्यक है, पर बड़े सपने देखना ही पर्याप्त नहीं होता, बल्कि उन बड़े सपनों को पूरा करने के लिए बड़े पुरुषार्थ बड़े पराक्रम किया जाना भी आवश्यक है। बड़े सपने बड़े पराक्रम, बड़े पुरुषार्थ से ही पूर्ण होते हैं। अपनी समस्त शारीरिक, मानसिक ऊर्जा को अपने बड़े सपनों को पूरा करने में लगाना अनिवार्य भी है और आवश्यक भी।

भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० ए०पी०जे० अब्दुल कलाम ने बहुत सुंदर कहा है कि 'सपने वे नहीं, जो हम सोते हुए देखते हैं, बल्कि सपने वे हैं जो हमें सोने नहीं देते।' अपने वर्तमान के पल-पल, क्षण-क्षण को आप अपने सपनों को पूरा करने में लगाएँ। स्वामी विवेकानंद ने बहुत सुंदर कहा है कि 'एक विचार लो। उसे अपना जीवन बना लो। उसके बारे में सोचो, उसके सपने देखो, उस विचार को जीओ' अर्थात उस सपने को जीओ। अपने मस्तिष्क, मांसपेशियों, नसों, शरीर के हर हिस्से को उस विचार में डुबो दो और बाकी सभी विचारों को किनारे रख दो।

यही सफल होने का तरीका है। अपने वर्तमान समय को सबसे कीमती, सबसे मूल्यवान समय, वास्तविक समय जानकर, पहचानकर उसे अपने लक्ष्य, अपने सपने को पूरा करने में लगाएँ। यही सफलता का स्वर्णिम सूत्र है, यही जीवन के हर क्षेत्र में सफल होने का मंत्र है। ❑

एक बालक को उसके पिताजी ने विद्याध्ययन हेतु गुरुकुल भेजा। बालक गुरुकुल में विद्या ग्रहण करने लगा। एक दिन गुरुजी ने बच्चे को एक पाठ याद करने हेतु दिया, परंतु बहुत प्रयत्नों के बाद भी उस बालक को वह पाठ याद नहीं हुआ। गुरुजी को उस पर बहुत गुस्सा आ गया। उन्होंने दंड देने के लिए छड़ी उठाई तो बालक ने अपना हाथ सामने कर दिया।

गुरुजी ज्योतिष शास्त्र के प्रखर ज्ञाता भी थे। उन्होंने बच्चे का हाथ देखा तो उनका सारा क्रोध शांत हो गया, उन्होंने छड़ी रख दी। वे बच्चे से बोले—"बेटा! तुम्हारे हाथ में तो विद्या की रेखा ही नहीं है, इसीलिए तुम्हें पाठ याद नहीं हुआ, तुम्हारी गलती नहीं है। तुम कभी विद्या प्राप्त नहीं कर सकोगे।"

यह सुनकर उस बालक ने नुकीला पत्थर उठाकर अपने हाथ पर रेखा खींच ली। आगे चलकर यही बालक संस्कृत के प्रख्यात विद्वान पाणिनि के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है।

आत्मप्रज्ञा का जागरण

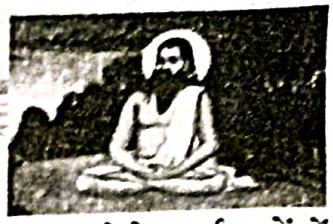

इस संसार की अनुपम, सबसे कीमती धरोहर है—अपने अंत:करण से सशक्त एवं जीवन से बल, आरोग्य एवं तेज का प्रस्फुटन होना। यह तभी संभव है, जब मनुष्य अपनी आत्मप्रेरणा को पहचान ले; क्योंकि गिरने के बहुत साधन हो सकते हैं, परंतु उठने का एक ही, वह है आत्मविगलन।

इसके बिना वह समर्थता नहीं आती जो कि हमें चाहिए। जीवन का स्वरूप ही परिवर्तित हो जाता है, यदि हम यह समझ लें कि अपने भीतर एक महान शक्ति का निवास स्थान है। जो रुकना, बहकना या बिखरना नहीं जानती, जो पदार्थ की गुलामी से कोसों दूर है, जिसे जीवन ने हमें किसी विशेष उद्देश्य से दिया है।

यह शक्ति है आत्मा की वह पुकार कि उसे सतत ऊँचा उठना है, इस संसार के झंझावातों के मध्य कभी भी विचलित नहीं होना है। जब यह हो जाएगा तो मनुष्य एक पारदर्शी चेतना का धनी कहलाएगा, जिसके द्वारा सभी प्रकार की उन्नति संभव है।

हम यह भूल जाते हैं कि हमें बल देने वाला कौन है? वह कौन है जो हमारी सभी आकांक्षाओं के तले मुखरित हो रहा है, जिसके द्वारा मनुष्य का रूप अपने अतीव सौंदर्य को प्राप्त हो रहा है—वह है आत्मा। जिसने उसकी प्राप्ति कर ली उसे संसार में कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता है।

आत्मा की अमर सत्ता को अपने कार्यों द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान करने को ही साधना कहते हैं। इस अत्यंत ही महान उद्देश्य के लिए जीवन मिला है और मनुष्य उसे किन प्रयोजनों में, जड़ताग्रस्त, अंधकार से प्रेरित ओछे कार्यक्रमों में लगा देता है।

जब तक हमारा अंतर्मन शुद्ध, निष्पाप एवं हर प्रकार की संकीर्णता से परे नहीं हुआ, हममें जीवन को नवरूप में सुगठित करने की प्रेरणा नहीं उभरी, हम पूर्ववत् मान्यताओं और चाल-चलन को त्यागने में समर्थ नहीं हो सके, तब तक जीवन का प्रकाश हमसे वंचित ही रहेगा; क्योंकि हम एक अधूरी चेतना के धनी होंगे, जिसने अभी तक उठना ही नहीं सीखा है।

जिसे सच में जाग्रति चाहिए वह अपने बंधनों को पूर्ण रूप से त्यागना सीखे, इसके उपरांत किसी महान प्रेरणा के आशीष में अपने जीवन को सँवारने एवं अपने उद्देश्य की प्राप्ति की दिशा में बढ़े।

जो व्यक्ति यह कर सका, उसे जीवन में कभी भी निराश होने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि इसके उपरांत मनुष्य का चिंतन उस अलौकिक आभा एवं तदनुरूप गति को प्राप्त होता है, जिसे कभी ऋषियों ने स्वीकारा था, संतों ने जिसका गुणगान किया तथा जो कभी भारत की मूल परंपरा का अनिवार्य अंग रहा था।

इसे ही आत्मप्रज्ञा कहते हैं, जो समर्पण से, विश्वास से और धैर्यपूर्वक अपने जीवन के अनुसंधान से प्राप्त होती है। इसके उपरांत जीवन साधारण नहीं रह जाता, उसके चरम उत्कर्ष को हमारा हृदय प्रतिपल बेचैन रहने लगता है, अंतरंग का विषय-व्यापार थमने लगता है तथा हमें लघु से विराट बनने का अवसर प्राप्त होता है।

यही आत्मसाधना है। इसके उपरांत जीवन में एकमात्र कार्ययोजना अपनी दिव्यता के प्राकट्य की तथा सभी प्रकार की आंतरिक दुर्बलताओं के परित्याग की ही रह जाती है।

जब हम अपने को इस रूप में देखते हैं, तब हमारे द्वारा किसी महान शक्ति-सत्ता को अपने कार्यों में परिलक्षित होने का अवसर मिलता है। जब हम जानते हैं कि हम उसके वाहक हैं तथा उसी के उद्देश्य के प्रतिनिधि तो यह भी समझ में आने लगता है कि जीवन हमसे क्या चाहता है।

उसकी एक ही इच्छा है कि हम समर्थ बनें, किसी भी प्रकार के विकार को अपने भीतर रहने न दें, अपनी आत्मा को इतना उज्ज्वल बनाएँ कि उससे अपने स्रोत की गरिमा का भान हो सके। यही वास्तव में मनुष्य की वह प्रगति है, जिसे करने वह इस धरती पर आया है।

अपनी सब इच्छाओं को परमात्मा को समर्पित कर दें, फिर उसे ही अपनी कार्यनीति बना उच्चतर उमंग का प्रतिनिधित्व करें। यही दैवी मार्ग है, इसके बिना साधना में सफलता नहीं मिलती तथा मनुष्य अंधक्रियाकलापों में व्यस्त रहकर अपने जीवन की इतिश्री कर देता है।

हमें चाहिए वह शक्ति जो जगाए रखे, जो तन-मन-प्राण सभी में ओत-प्रोत हो व हमारा मार्गदर्शन करे एवं हमसे वह करवाए, जिसके लिए हम बने हैं।

यही प्रकाश का दिव्य पथ है, इसके प्रतिवहन पर ही आत्मा का सुराज्य प्राप्त होता है एवं तब फिर जीवन अधूरा नहीं रह जाता। उसे नवीन शक्ति एवं उत्साह की प्राप्ति होती है तथा वह हर प्रकार के पीड़ा-पतन से मुक्त हुआ आरोहण के पथ पर चल पड़ता है। ❑

समर्थ गुरु रामदास रामायण लिख रहे थे। वे रामायण लिखते जाते और भक्तों को सुनाते जाते। कहते हैं कि रामायण की कथा का जहाँ कहीं भी वाचन होता है, हनुमान जी किसी-न-किसी रूप में वहाँ जरूर मौजूद रहते हैं। अनुश्रुति के अनुसार, रामदास की रामकथा के समय भी हनुमान जी मौजूद थे। समर्थ रामदास ने सीता जी की खोज में हनुमान जी के जाने का प्रसंग लिखा था। प्रसंग सुनाते हुए उन्होंने कहा—"हनुमान जी अपनी शक्ति का इस्तेमाल कर अशोक वन पहुँचे। वहाँ उन्होंने जो फूल देखे वे सफेद थे।"

इस पर हनुमान जी ने आपत्ति प्रकट की। समर्थ गुरु ने बात काटते हुए कहा—"मैं साफ-साफ देख रहा हूँ कि वहाँ सफेद रंग के फूल थे।" हनुमान जी अब अपने असली रूप में प्रकट हो गए और बोले—"मैं हनुमान हूँ। मैंने अशोक वन में सफेद नहीं, लाल रंग के फूल देखे थे, पर समर्थ रामदास भी अपनी बात पर अडिग रहे। दोनों में गहरा विवाद हो गया। कहते हैं कि विवाद सीता जी के पास पहुँचा। सीता जी ने कहा—"फूल तो सफेद ही थे, परंतु हनुमान की आँखें क्रोध से लाल हो रही थीं, इसलिए सफेद फूल भी उन्हें लाल दिखाई दिए।" वस्तुतः हमें बाहर का संसार भी अपने अंतरंग के अनुरूप ही दिखाई पड़ता है।

पहले स्वयं को बदलें

जेकस जल्द-से-जल्द अमीर बनना चाहता था। उसने सोचा शराब बेचकर मैं शीघ्र ही अमीर बन जाऊँगा और ऐशोआराम की जिंदगी बिताऊँगा। अमीर बनते ही मेरे सारे दुःख दूर हो जाएँगे। मेरी सारी परेशानियाँ, कठिनाइयाँ मिट जाएँगी। सो उसने शराब बेचने का धंधा शुरू कर दिया।

अमीर-गरीब सभी उससे शराब खरीदने लगे। देखते-ही-देखते उसने कई शराबघर खोल दिए। उसके शराबघरों में अधिक ग्राहक गरीब और मजदूरपेशा ही आते थे। अपने ग्राहकों को फँसाने के लिए वह बड़ी ही चालाकी से काम लेता था।

पहले तो वह अपने आदमियों को उनके पास दोस्ती करने के लिए भेज देता था, जो उनसे दोस्ती का नाटक करके उन्हें शराब पीने की लत लगवा देते और जेकस के नियमित ग्राहक बना देते थे। शराब की लत एक ऐसी बीमारी है, जो पीने वालों को शारीरिक और मानसिक रूप से रुग्ण और बीमार तो करती है, साथ ही उन्हें आर्थिक दृष्टि से कंगाल भी बना देती है।

समाज भी ऐसे लोगों को आदर व सम्मान की दृष्टि से नहीं, बल्कि हेय दृष्टि से ही देखता है। इसलिए शराब से लाभ कुछ भी नहीं, बल्कि हर दृष्टि से हानि-ही-हानि है। कई अमीर भी शराब के कारण आर्थिक दृष्टि से कंगाल और बरबाद होते देखे गए हैं। शराब के कारण संसार में खुशियों से भरे-पूरे अगणित परिवार बरबाद हुए हैं।

अगर शराब की लत किसी गरीब आदमी को लग जाए तो उसके परिवार का सुख-चैन भी समाप्त हो जाता है। जो दूध और दवा खरीदने में भी असमर्थ होते हैं, वे भी शराब की लत के कारण अनुचित तरीके से, हिंसा, हत्या, लूट आदि के द्वारा अपने शौक पूरे करने लग जाते हैं। शराब न सिर्फ व्यक्ति, बल्कि परिवार और समाज सबके लिए दुःख और अशांति का कारण बन जाती है परंतु शराब के धंधे में लिप्त लोगों को पैसे के अलावा शराब से व्यक्ति, परिवार और समाज को होने वाली हानियों की कोई परवाह नहीं होती।

जेकस को भी इन चीजों की कोई परवाह नहीं थी। इसलिए लोग जेकस को अनाचारी और दुष्ट व्यक्ति के रूप में जानने लगे थे। उसके कारण कई व्यक्ति और परिवार बरबाद हो चुके थे। एक बार जेकस के गाँव में ईसा का आगमन हुआ। लोगों ने उन्हें बताया कि जेकस बहुत दुराचारी व्यक्ति है और वह ईसा के आने से बहुत क्रुद्ध है; क्योंकि ईसा लोगों को नेकी की जिंदगी जीने का उपदेश देते थे।

उनके उपदेशों का लोगों पर प्रभाव भी होता था। कइयों ने उनसे प्रभावित होकर शराब, नशा और कुमार्ग छोड़ दिया था। इसलिए जेकस को लगा कि ईसा के उपदेश सुनकर गाँव के लोग नेक जिंदगी जीने को प्रेरित होंगे, जिससे उसका शराब का धंधा प्रभावित होगा। इसलिए वह अपने गाँव में ईसा के आगमन का समाचार सुनकर क्रुद्ध था। जेकस के नाराज होने की बात जब ईसा को पता लगी तो उन्होंने कहा—"मैं जेकस के घर जाऊँगा और कल उसी का आतिथ्य ग्रहण करूँगा।"

जेकस को जैसे ही इस बात का पता चला तो वह घर से निकलकर जंगल की ओर चला गया;

क्योंकि वह ईसा से मिलना नहीं चाहता था। उसने ईसा के चुंबकीय व्यक्तित्व के बारे में काफी कहानियाँ सुन रखी थीं। जब ईसा उसके घर पहुँचे तो उन्हें पता चला कि वह तो जंगल में चला गया है, पर वे भी कहाँ मानने वाले थे।

ईसा उसे खोजते हुए वहाँ पहुँचे, जहाँ जेकस था। उसने जब उन्हें देखा तो बड़ा हैरान हुआ और उसकी हैरानी तब और बढ़ गई, जब ईसा ने कहा—"जेकस मैं आज तुम्हारा अतिथि बनने के लिए आया हूँ।" ऐसा कह उन्होंने उसे हृदय से लगा लिया। पेड़ों की आड़ में खड़े शिष्य यह सुन रहे थे।

उन्होंने सोच रखा था कि अब शायद ईसा जेकस को उपदेश करें कि उसे शराब का वह धंधा छोड़ देना चाहिए, जिससे हजारों लोग बरबाद हो चुके हैं और बरबाद होने वाले हैं। जेकस को शराब, हिंसा, व्यभिचार, अनाचार आदि बुराइयों का परित्याग कर पवित्र जीवन जीना चाहिए, किंतु ईसा ने वहाँ ऐसा कोई उपदेश नहीं दिया।

जेकस और ईसा, दोनों मौन थे और भावभरे नेत्रों से एकदूसरे की ओर देख रहे थे। ईसा के भावभरे नेत्रों ने ही मानो जेकस को सब कुछ कह दिया। अंत में जेकस ने चुप्पी तोड़ी।

वह बोला—"मैं आपके सामने नतमस्तक हूँ और आपके सामने यह संकल्प लेता हूँ कि आज से न तो मैं स्वयं कुमार्ग पर चलूँगा और न दूसरों को प्रेरित करूँगा तथा जिनसे मैंने अनुचित धन प्राप्त किया है, उन्हें चौगुना वापस करने का वचन देता हूँ।" ऐसा कहकर उसने ईसा के चरणों में मस्तक झुकाया और वहाँ से चला गया।

पेड़ों की आड़ में खड़े ईसा के शिष्य यह सब क्रियाकलाप देख रहे थे। उन्हें जेकस का व्यवहार देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वे पेड़ों की आड़ से निकलकर ईसा के सामने आए और भौंचक्के स्वर में बोले—"प्रभो! आपने तो जेकस को कोई उपदेश भी नहीं दिया, फिर भी यह चमत्कार कैसे हुआ? इतने खतरनाक और बुरे व्यक्ति को आपने कैसे बदल दिया?"

ईसा बोले—"प्रभावी व्यक्तित्व होता है, उपदेश नहीं। मेरे बच्चो! बुराइयाँ छोड़ने का संकल्प दिलाने का यथार्थ अधिकार उन्हीं को है, जो स्वयं मन, वाणी और अंतःकरण से बुराइयों से पूर्णतया मुक्त हो चुके हैं। तुम भी पहले जेकस से मिले थे, पर तुममें अवश्य ही बुराइयाँ शेष होंगी तभी तुम्हारे कहने से जेकस ने संकल्प ग्रहण नहीं किया था। वस्तुतः कोई व्यक्ति न बुरा होता है न पापी। वह ज्ञान के अभाव में ही बुरे और पापकर्म करता है, पर वह हमेशा के लिए ही बुरा या पापी नहीं रह सकता। जब उसे ज्ञान होता है तो उसे स्वयं अपनी बुराइयों, भूलों का एहसास होता है और तब वह उन बुराइयों को छोड़ने के लिए प्रेरित और संकल्पित होता है।"

मा पापत्वाय नो
नरेन्द्राग्री माभिशस्तये।
मा नो रीरद्यतं निदो॥

अर्थात श्रेष्ठ पुरुषों का यह कर्त्तव्य है कि वे दूसरों को दुष्कर्मों, पापकर्मों की ओर न जाने दें।

संदेश यही है कि यदि हम किसी को बदलना चाहते हैं तो पहले स्वयं को बदलें। बदले हुए लोगों को देखकर ही लोग बदलने को, अच्छे मार्ग पर चलने को प्रेरित, संकल्पित होते हैं। सचमुच स्वयं को बदले बिना दूसरों को बदलना संभव नहीं। अतः हम पहले स्वयं को तो बदलें। ❑

जीवन के नवनिर्माण के क्षण

दिन भर की व्यस्त चर्या में कुछ एकांतिक पल जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने के स्वर्णिम पल हो सकते हैं। प्रातः से सायं एवं रात्रि के दैनिक जीवन की यांत्रिक प्रक्रिया एक समय के पश्चात भारी पड़ने लगती है, जिसमें एक दिनचर्या में बँधकर जीवन की सरसता, उत्साह एवं उद्देश्य सब धुँधले से पड़ने लगते हैं।

ऐसे में कुछ एकांतिक पलों की आवश्यकता अनुभव होती है, जब रोजमर्रा के चक्रव्यूह से हट कर एक नए परिवेश में स्वयं को तरोताजा करते हुए, नए सिरे से जीवन पर विचार किया जा सके तथा इसमें नए रस, ऊर्जा एवं उत्साह का संचार किया जा सके।

जीवन के ये एकांतिक पल, दैनिक जीवन की जड़ता को तोड़ने वाले उपक्रम सिद्ध होते हैं और इसमें एक नई ताजगी एवं स्फूर्ति का संचार करते हैं। आत्मचिंतन के इन पलों में हम स्वयं का गहनतम स्तर पर साक्षात्कार करते हैं और जीवन को पुनर्परिभाषित करने की दिशा में बढ़ते हैं। वस्तुतः ये एकांतिक पल हमारे लिए आत्मबोध एवं आत्मविकास के पल होते हैं, जिनमें हम जीवन को और भी गहनता के साथ जीने के लिए तैयार होते हैं।

साथ ही ये एकांतिक पल तन-मन एवं अंतरात्मा के लिए विश्रांति के पल भी होते हैं, जहाँ हम जीवन की सारी थकान उतारते हैं। इसके साथ जीवन के सकल तनाव एवं अवसाद के बादल छँट जाते हैं और जीवन एक नई ऊर्जा के साथ चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार होता है। विश्रांति के ये पल मानसिक एवं भावनात्मक घावों को भरने वाले भी होते हैं, जिनका प्रभाव गहनतम स्तर पर मरहम का काम करता है।

ये पल कुछ नई रचना व सृजन के भी होते हैं, जब मन एक नई शांति, स्थिरता एवं एकाग्रता के साथ जीवन के विविध क्षेत्रों में नए सिरे से पुनर्निधारण की क्षमता के साथ संपन्न होता है। जीवन के विभिन्न लक्ष्यों, यथा—कैरियर, व्यवसाय, आपसी संबंध, स्वास्थ्य, धन आदि पर इन पलों में नए सिरे से पुनर्विचार संभव होता है और हम नई योजना के साथ आगे बढ़ते हैं। वस्तुतः ये नवनिर्माण के पल होते हैं, एक नई स्पष्टता एवं अंतर्दृष्टि देने वाले क्षण होते हैं, जो जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाने वाले होते हैं।

इस तरह से ये आत्मा में नई ताजगी व ऊर्जा को भरने वाले पल होते हैं, स्वयं को ऊपर उठाने के सुअवसर होते हैं। जीवन को वर्तमान में जीने की कला हम इन्हीं पलों में सीखते हैं। हर पल नई संभावनाओं, नए सृजन एवं नई ताजगी के साथ जीते हैं। साथ ही ये आपसी संबंधों को सुदृढ़ करने वाले, आरोग्यवर्द्धक एवं उत्पादकता बढ़ाने वाले पल होते हैं।

ये आत्मशांति एवं आत्मोत्कर्ष के पल होते हैं। सत्संग-स्वाध्याय के साथ ये गहन आत्ममंथन के पल होते हैं। इसके भी आगे ध्यान एवं प्रार्थना के गहनतम प्रयोगों के साथ ये आंतरिक रूपांतरण के निर्णायक पल होते हैं। वस्तुतः ये एकांतिक पल हमारे लिए अपने वास्तविक आत्मस्वरूप को खोजने व पाने के पल हो सकते हैं, जहाँ हम जीवन के सूक्ष्म प्रारूप से परिचित होते हैं व इससे गहनतम सीख लेते हैं।

इस तरह जीवन जब भी दैनंदिन चक्रव्यूह में उलझकर बोझिल होने लगे और विश्राम की आवश्यकता अनुभव हो तो, इन एकांतिक पलों को सहेजा जा सकता है। ये प्रकृति की गोद में, घर के एकांतिक वातावरण में, सप्ताह-मास के अंतिम दिनों के रूप में कुछ भी हो सकते हैं। विद्यार्थियों के लिए सत्रांत के ये स्वर्णिम पल हो सकते हैं। गायत्रीसाधकों के लिए युगतीर्थ में आकर नूतन ऊर्जा धारण करने के एवं अंतःऊर्जा सत्र के सुअवसर हो सकते हैं।

परमपूज्य गुरुदेव एक नियत अंतराल में इन पलों को हिमालय के ध्रुवकेंद्र में गहन तप-साधना एवं सृजन-अनुसंधान करते हुए बिताते थे और आकर युगनिर्माण-अभियान की निर्णायक योजनाओं को अंजाम देते थे, जिनका परायण गुरुदेव की आत्मकथा 'हमारी वसीयत और विरासत' तथा 'सुनसान के सहचर' पुस्तकें पढ़कर किया जा सकता है। हम भी अपनी स्थिति, सुविधा एवं रुचि के अनुरूप इन एकांतिक पलों को सहेजकर अपने जीवन अभियान को नूतन दिशा दे सकते हैं। ❑

एक बार महाराजा पुरंजय ने राजसूय यज्ञ का आयोजन किया। इसमें उन्होंने दूर-दूर के ऋषि-मुनियों को आमंत्रित किया। प्रजा की सुख-समृद्धि के उद्देश्य से आयोजित यज्ञ में विधि-विधान से आहुतियाँ दी जाने लगीं। यज्ञ की पूर्णाहुति का दिन आया। महाराज, महारानी, राजकुमार सभी यज्ञमंडप में विराजमान थे। वेदमंत्रों की गुंजन एवं अग्निहोत्र से वातावरण सुगंधित हो रहा था।

अचानक एक किसान के रोने की आवाज सुनाई दी। वह रोते हुए कह रहा था—"डाकुओं ने मेरी संपत्ति लूट ली। मेरी गाय छीनकर ले गए। डाकू अभी कुछ ही दूर गए होंगे। राजा तुरंत लुटेरों को पकड़कर मेरी संपत्ति दिलाएँ।" पंडितों ने कहा—"इस व्यक्ति को पकड़कर दूर ले जाओ। यदि राजा इस पर दया करके पूर्णाहुति किए बिना उठ गए तो देवता कुपित हो उठेंगे, लेकिन राजा किसान का रुदन सुनकर करुणार्द्र हो उठे और बोले—"मेरा पहला कर्त्तव्य अपनी प्रजा का संकट दूर करना है। मैंने अनेक यज्ञ पूर्ण कराए हैं। आज मैं पहली बार यज्ञ पूर्ण किए बिना अपने राज्य के किसान का संकट दूर करने जा रहा हूँ।"

तभी साक्षात् यज्ञपुरुष वहाँ प्रकट हुए और बोले—"राजा की आज की परीक्षा यह थी कि वे अपनी प्रजा के प्रति कर्त्तव्य का पालन करते हैं या नहीं। राजा परीक्षा में सफल हुए। उन्हें अब सौ यज्ञों का फल मिलेगा।"

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार–199

बौद्ध धर्म का प्रचार एवं प्रसार

धार्मिकता और आध्यात्मिकता भारतीय संस्कृति की आत्मा के सर्वोच्च मूल्य हैं। इन्हें पोषित-विकसित व विस्तारित करने में सनातन धर्म—जिसे वैदिक धर्म भी कहा जाता है, की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और मुख्य भूमिका रही है। यह निर्विवाद सत्य है कि भारतवर्ष के उच्चतम आदर्शों और मूल्यों को प्रतिष्ठापित करने और धार्मिकता व आध्यात्मिकता से इन्हें विकसित बनाए रखने वाला सनातन धर्म ही है, परंतु इन्हीं मूल्यों-आदर्शों और धर्म-अध्यात्म की दीप्ति को और अधिक प्रखर व तीव्र बनाने का योगदान बौद्ध धर्म का भी रहा है।

भारत की संस्कृति एवं समाज पर भी वैदिक धर्म के अलावा यदि सबसे ज्यादा प्रभाव व व्यापकता दिखाई देती है तो वह बौद्ध धर्म की ही है। भगवान बुद्ध द्वारा प्रवर्तित बौद्ध धर्म ने भारत की सांस्कृतिक व सामाजिक अवधारणाओं को सर्वथा नूतन दृष्टि एवं विचारों से और अधिक व्यापक तथा सार्वभौम बनाने का कार्य किया है। भारत की मूल सांस्कृतिक भावना को भारत के साथ-साथ विदेशों में भी पहुँचाने का महान कार्य बौद्ध धर्म के माध्यम से हुआ है।

ऐतिहासिक साक्ष्यों एवं प्राचीन साहित्यों से यह स्पष्ट हो गया है कि भारत के महान सम्राट अशोक और कनिष्क के काल में बुद्ध के विचारों को लेकर अनेकों भिक्षु अन्य देशों को गए और वहाँ बुद्ध की वाणी में भारतीय धर्म और संस्कृति का संदेश सुनाया। चीन, जापान, मंगोलिया, तिब्बत, म्यान्मार, जावा, सुमात्रा, कंबोडिया, लंका जैसे दक्षिण पूर्ण एशिया के सुदूर देशों में बौद्ध धर्म का प्रचार कर उन्होंने बौद्ध धर्म को स्थापित किया, जिसका प्रमाण एवं परंपरा इन देशों में अभी भी मौजूद है। बौद्ध धर्म को आत्मसात् करने वाले अनेक देशों के लिए भारत एक पवित्र तीर्थ की तरह बन गया तथा वहाँ के निवासियों ने महात्मा बुद्ध के विचारों व भारतीय संस्कृति के मार्मिक पहलुओं को जानने के उद्देश्य से भारत की यात्रा करने की सुदीर्घ परंपराएँ स्थापित कीं।

वर्तमान में भी भगवान बुद्ध के विचार—समाज, संस्कृति और संपूर्ण विश्वमानवता के लिए उतने ही प्रासंगिक और व्यावहारिक हैं, जितने प्राचीनकाल में रहे हैं। उनके सिद्धांत को लेकर बौद्ध धर्म विश्व के जिस भी स्थान पर पहुँचा, वह स्थान उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका है। **वसुधैव कुटुम्बकम्** और **सर्वे भवन्तु सुखिनः** जैसी उदात्त भावनाओं को आत्मसात् करने वाले बौद्ध धर्म की विशेषताओं, विचारों और प्रभावों को जानने की जिज्ञासा प्रत्येक मानवता प्रेमी के मन में उठती है। बौद्ध धर्म कब, कौन-सी परिस्थितियों में उत्पन्न हुआ, उसकी लोकप्रियता और व्यापकता के क्या कारण रहे और उसकी प्रभावशीलता के कौन-से प्रमुख कारक हैं, ऐसी ही महत्त्वपूर्ण जिज्ञासा और प्रश्नों का समुचित समाधान प्रस्तुत करने वाला एक महत्त्वपूर्ण शोध कार्य देव संस्कृति विश्वविद्यालय में संपन्न किया गया है।

यह शोध अध्ययन वर्ष—2020 में विश्वविद्यालय के इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग के अंतर्गत शोधार्थी श्रीमती गीता द्वारा संपन्न किया गया है। इस विशिष्ट अध्ययन को

विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ0 प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ0 मोना के निर्देशन व डॉ0 अनुराग के सहनिर्देशन में पूर्ण किया गया है।

इस शोध का शीर्षक है—**'प्राचीन भारत एवं उत्तराखंड में बौद्ध धर्म का प्रचार एवं प्रसार (छठी शताब्दी ईसा पूर्व से द्वितीय शताब्दी ई० के विशेष संदर्भ में)।'** शोधार्थी द्वारा अपने इस महत्त्वपूर्ण शोधकार्य को कुल सात अध्यायों में वर्गीकृत कर प्रस्तुत किया गया है। पाठकों के ज्ञानवर्द्धन की दृष्टि से सभी का सार-संक्षेप यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

शोध का प्रथम अध्याय **'भूमिका'** है। इसके अंतर्गत बौद्ध धर्म का संक्षिप्त परिचय एवं विशेषताओं की विवेचना है। भारतभूमि पर विकसित होने वाले विभिन्न धर्म-संप्रदायों, मतों में बौद्ध धर्म का अद्वितीय स्थान है। विश्व समाज के लिए सदैव इस धर्म के दरवाजे खुले रहे हैं, इसलिए इसका प्रभाव समान रूप से सभी वर्गों में सार्वभौमिक रहा है।

बुद्ध के विचारों के साथ-साथ कला, भाषा एवं साहित्य ने मिलकर बौद्ध धर्म को भारत की अमूल्य विरासत का स्थान प्राप्त कराया है। ईसा पूर्व 563 में जन्मे गौतम बुद्ध का समय इतिहास की दृष्टि से धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक क्रांति का युग था। वैदिक धर्म का स्वरूप कर्मकांडीय आडंबरों और जटिलता से भर गया था। जनसमाज को दिशा और प्रेरणा देने वाली नई एवं कल्याणकारी विचारधारा उस युग की माँग बन गई थी।

बुद्ध के विचारों ने युग की इसी माँग को पूरा किया और धीरे-धीरे बौद्ध धर्म के रूप में उनके विचार विश्वव्यापी बनते चले गए। बौद्ध धर्म का उदय भारतभूमि पर सर्वथा एक नई धार्मिक और आध्यात्मिक क्रांति का प्रतीक बनकर प्रस्तुत हुआ। इस धर्म में मानवीय सद्भावनाओं और नैतिक मूल्यों को सर्वोपरि स्थान दिया गया था, फलस्वरूप भारत के बाहर भी अनेक देश पूर्णरूपेण इसके अनुयायी होते चले गए।

दुःखों से मुक्ति और कर्म, आचरण, व्यवहार की शुद्धता ही इस धर्म की मूल मंत्रणा रही। जीवन दर्शन के रूप में चार आर्यसत्य और अष्टांगिक मार्ग ने बौद्ध धर्म को मानव कल्याण के एक सार्वभौमिक आदर्श के रूप में स्थापित कर दिया।

अध्ययन का द्वितीय अध्याय दो भागों में वर्गीकृत है—**'महात्मा बुद्ध का जीवन एवं उनकी शिक्षाएँ तथा बौद्ध धर्म के विभिन्न संप्रदाय।'** गौतम बुद्ध का मूल नाम सिद्धार्थ था। पिता शुद्धोधन और माता माया देवी की संतान बुद्ध का बचपन अलौकिकता से पूर्ण रहा। युवावस्था में राजपाट छोड़ वे सत्य की खोज में निकल गए और तपस्या कर निर्वाण प्राप्त किया। ज्ञानप्राप्ति की अवस्था को संबोधि कहा जाता है, इसी से उनका नाम बुद्ध पड़ा। सर्वप्रथम उन्होंने चार आर्षसत्यों का उपदेश किया और समस्त दुःखों से मुक्ति पाने के लिए अष्टांगिक मार्ग का प्रतिपादन किया।

यह चार आर्षसत्य ही धर्मचक्र प्रवर्तन के रूप में बौद्ध धर्म के मूल आधार हैं। बौद्ध धर्म आगे चलकर दो विचारधाराओं में—हीनयान एवं महायान के रूप में विकसित हुआ। हीनयान ने बौद्ध के मूल रूप को महत्त्व देते हुए बुद्ध को अवतार न मानकर ज्ञानप्राप्त धर्मप्रवर्तक मात्र माना। वैभाषिक और सौत्तांतिक बौद्ध संप्रदाय हीनयान के ही दो भाग हैं। इसके विपरीत महायान को उत्कृष्ट मार्ग कहा जाता है। मानव समाज के कल्याण और परोपकार की भावना से ओत-प्रोत महायान का बौद्ध धर्म में

सर्वाधिक महत्त्व है। माध्यमिक व योगाचार—ये दो महायान के संप्रदाय हैं।

शोध का तृतीय अध्याय है—**महाजनपद काल का परिचय एवं इस काल में बौद्ध धर्म का प्रचार एवं प्रसार।** इतिहासकारों की गणना में 1000 से 600 ईसा पूर्व के बीच का काल भारत का महाजनपद काल कहलाता है। बुद्ध के समय संपूर्ण राष्ट्र 16 प्रमुख महाजनपदों में विभक्त था। ये हैं—अंग, मगध, काशी, कोशल, वज्जि, मल्ल, वत्स, चेदि, कुरु, पांचाल, मद्र, शूरसेन, अवन्ति, गांधार, कंबोज और अश्मक।

इस महाजनपद काल में अनेक राजाओं द्वारा बौद्ध धर्म का अपने-अपने साम्राज्य में प्रचार-प्रसार किया गया। कोशल, वत्स, अवंति, मगध-इन चार महाजनपदों ने तो बौद्ध धर्म के पोषण, संरक्षण और प्रसार में अभूतपूर्व योगदान दिया। देश-विदेश में बौद्ध धर्म की लोकप्रियता के पीछे इन्हीं महाजनपदों के शासक की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

चतुर्थ अध्याय के अंतर्गत **मौर्यकाल का परिचय तथा अशोक द्वारा बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार** की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की गई है। भारतवर्ष के इतिहास में सिकंदर के वापस लौट जाने और नंदवंश के पतन के साथ ही चंद्रगुप्त मौर्य के नेतृत्व में भारतीय एकता के पर्याय मौर्य साम्राज्य का उदय हुआ। चंद्रगुप्त का शासन उनके गुरु चाणक्य के विचारों से प्रेरित रहा। 345 ईसा पूर्व जन्मे चंद्रगुप्त मौर्य ने ही नंदवंश को पराजित कर मौर्य साम्राज्य की स्थापना की।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र और जैन कल्पसूत्र इसी काल की रचनाएँ हैं। चंद्रगुप्त के पश्चात बिंदुसार और फिर सम्राट अशोक द्वारा इस शक्तिशाली साम्राज्य को नेतृत्व प्रदान किया गया। अशोक का शासन भारतीय इतिहास का गौरवशाली काल माना जाता है। धर्म, संस्कृति, समाज, साहित्य, कला आदि का अद्‌भुत विकास इस काल में देखा जाता है। कलिंग युद्ध के पश्चात सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म को अपना लिया और जीवनपर्यंत उसके प्रचार-प्रसार में लगे रहे।

अध्ययन का पंचम अध्याय है—**'कुषाण काल : एक परिचय तथा कुषाण काल में बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार।'** मौर्य साम्राज्य के अस्त होने पर कुषाणकाल का उदय हुआ। इस काल के राजाओं का शासन गुप्तकाल तक चला। मान्यता है कि टूंडो-ग्रीक, शक-पहलव की भाँति कुषाण भी विदेशी थे।

इस युग में धर्म, साहित्य और मूर्तिकला का महत्त्वपूर्ण विकास हुआ। महायान संप्रदाय का उदय, गांधारकला और बौद्ध मूर्तिकला का सूत्रपात इसी काल में हुआ। इस साम्राज्य के सात राजाओं में तीसरे कनिष्क सबसे प्रभावशाली शासक माने जाते हैं। उन्होंने जीवन के अंतिम काल में बौद्ध धर्म अपनाया और बौद्ध प्रचारक के रूप में बौद्ध धर्म की बोधगम्य शिक्षाओं को नवजीवन प्रदान किया।

षष्ठ अध्याय है—**छठी शताब्दी ईसा पूर्व से द्वितीय शताब्दी ईसवीं तक उत्तराखंड में बौद्ध धर्म का प्रचार एवं प्रसार।** हिमालय की गोद में स्थित उत्तराखंड राज्य को देवभूमि भी कहा जाता है। पौराणिक ग्रंथों, महाकाव्यों में इस क्षेत्र की अत्यंत महत्ता उल्लिखित है। यह आदिकाल से धर्म, संस्कृति, सभ्यता और अध्यात्म-साधना का केंद्र रहा है। इसकी सीमाएँ उत्तर में तिब्बत, पूर्व में नेपाल, पश्चिम में हिमाचल प्रदेश तथा दक्षिण में उत्तर प्रदेश से लगी हुई हैं।

यह राज्य भारतवर्ष के उत्तरी भाग के रूप में प्रसिद्ध है। समय-समय पर यहाँ भारत के अनेक

सम्राटों का शासन रहा। जो शासक बौद्ध धर्म के अनुयायी रहे, उन्होंने उत्तराखंड में भी बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार किया। भिन्न-भिन्न शासन कालों में हुए बौद्ध धर्म के प्रचार से संबंधित साक्ष्य एवं अवशेष उत्तराखंड की भूमि पर अभी भी मौजूद हैं। इतिहासकारों के अनुसार छठी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर द्वितीय शताब्दी ई० तक शासकों एवं बौद्ध भिक्षुओं द्वारा यहाँ व्यापक प्रचार-प्रसार किया गया।

शोध अध्ययन का अंतिम अध्याय 'उपसंहार' है। इसके अंतर्गत सभी अध्यायों का सारांश प्रस्तुत करते हुए इसकी महत्ता, प्रासंगिकता और शोध निष्कर्ष के रूप में बौद्ध धर्म की प्राचीनता, व्यावहारिकता तथा सार्वभौम उपादेयता को उजागर किया गया है। बौद्ध धर्म भारत का अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त धर्म है। जनसमाज का समर्थन और इतिहास के शक्तिशाली शासकों द्वारा इसके संरक्षण एवं पोषण से इस धर्म ने भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं के विकास में अमूल्य योगदान दिया है। आज भी विश्व की एक-तिहाई जनता बौद्ध धर्म तथा इसके महान आदर्शों में अपनी श्रद्धा रखती है। यह शोध बौद्ध धर्म के मौलिक विचारों को उजागर करने के साथ ही इसके व्यावहारिक एवं गौरवशाली पक्षों की भी जानकारी प्रस्तुत करता है। ❑

एक नगर में एक सेठ रहता था, वह तो दरियादिल था, परंतु उसका मुनीम पाई-पाई का हिसाब रखने वाला था। एक बार सेठ ने एक गरीब व्यक्ति लक्खी सिंह को हजार रुपये का ऋण देने का आश्वासन दिया। वह गरीब मुनीम के पास गया तो मुनीम बोला—"पैसे तो ले जा। पर यह तो बता चुकाएगा इस लोक में या उस लोक में?"

गरीब को लगा कि इस लोक में कहाँ चुका पाऊँगा, अतः उसी लोक में चुकाने की कह देता हूँ। परलोक में चुकाने का आश्वासन देकर वह व्यक्ति घर तो लौट आया, पर उसकी अंतरात्मा उसे धिक्कारने लगी। अपने मन के भार से मुक्त होने वह एक संत के पास गया और उसने उनसे पूछा—"महाराज! मैं इस ऋण से परलोक में कैसे मुक्त हो सकता हूँ।"

संत बोले—"बेटा! लोक-परलोक तो शुभ-अशुभ कर्मों से मिलते हैं। तू ऐसा कर कि इन पैसों से एक प्याऊ राहगीरों के नाम निःशुल्क खोल दे। वे आते-जाते तुझे हृदय से धन्यवाद देंगे तो वही शुभ कर्म तेरे साथ परलोक को चले जाएँगे।"

लक्खी सिंह ने ऐसा ही किया। जब यह समाचार सेठ को मिला तो वह उससे मिलने पहुँचा और बोला—"भाई! तुम तो मेरे धन का सदुपयोग करके इसी लोक में ऋणमुक्त हो गए। अब तुम्हें कुछ लौटाने की आवश्यकता नहीं है।" उस गरीब की दरियादिली के कारण इस जगह लोगों ने तालाब खोदकर उसका नाम लक्खी ताल रख दिया। धन का सदुपयोग कीर्ति का कारण बनता है।

युगगीता – 306

अविभक्त को विभक्त देखता है राजसी ज्ञान

(श्रीमद्भगवद्गीता के मोक्ष संन्यास योग नामक अठारहवें अध्याय की इक्कीसवीं किस्त)

[विगत किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय के उन्नीसवें एवं बीसवें श्लोकों पर चर्चा की गई थी। इन श्लोकों में श्रीभगवान कहते हैं कि गुणों का विवेचन करने वाले शास्त्र में गुणों के भेद से ज्ञान और कर्म तथा कर्त्ता तीन-तीन प्रकार से कहे जाते हैं, उनको भी तुम यथार्थ रूप से सुनो। जिस ज्ञान के द्वारा साधक संपूर्ण विभक्त प्राणियों में अविनाशी भाव को देखता है—उस ज्ञान को तुम सात्त्विक समझो। यों देखने की दृष्टि से लोग, व्यक्ति, वस्तुएँ अलग-अलग रूप, आकार के प्रतीत होते हैं, परंतु उन सबमें वस्तुतः एक ही शुद्ध, चैतन्य, निर्विकार, शाश्वत सत्ता विद्यमान है—जिसे हम परमात्मा कहकर पुकारते हैं। वस्तु, व्यक्ति की प्रतीति अलग होते हुए भी उनकी स्वतंत्र सत्ता नहीं है—मात्र अज्ञान के कारण ही ऐसा प्रतीत होता है। सात्त्विक ज्ञान के कारण जब यह अज्ञान तिरोहित हो जाता है, तब साधक विनाशशील प्राणियों में भी अविनाशी परमात्मा को देख पाता है।

त्रिगुणात्मक प्रकृति के तीन गुण—सत्त्व, रज एवं तम हैं। इन तीनों गुणों के कार्यस्थल एकदूसरे से भिन्न हैं। श्रीभगवान कहते हैं कि उन तीन गुणों की भिन्नता से ज्ञान, कर्म तथा कर्त्ता का सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक भेद होता है—उसको वे अर्जुन को समझाएँगे। इनमें से सर्वप्रथम वे सात्त्विक पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि भिन्न-भिन्न भूतों व प्राणियों में जो एक अविभक्त सत्ता को देख पाता है—उसी के ज्ञान को सात्त्विक ज्ञान समझा जाना चाहिए।]

इसके उपरांत राजसिक ज्ञान को समझाते हुए श्रीभगवान, अर्जुन से कहते हैं कि

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं, नानाभावान्पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु, तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्॥ 21॥

शब्दविग्रह—पृथक्त्वेन, तु, यत्, ज्ञानम्, नानाभावान्, पृथग्विधान्, वेत्ति, सर्वेषु, भूतेषु, तत्, ज्ञानम्, विद्धि, राजसम्।

शब्दार्थ—किंतु (**तु**), जो (**यत्**), ज्ञान अर्थात जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य (**ज्ञानम्**), संपूर्ण (**सर्वेषु**), भूतों में (**भूतेषु**), भिन्न-भिन्न (**पृथग्विधान्**), नाना भावों को (**नानाभावान्**), अलग-अलग (**पृथक्त्वेन**), जानता है (**वेत्ति**), उस (**तत्**), ज्ञान को (तू) (**ज्ञानम्**), राजस (**राजसम्**), जान (**विद्धि**)।

अर्थात जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य संपूर्ण प्राणियों में अलग-अलग रूप से अनेक भावों को अलग-अलग समझता है, उस ज्ञान को तुम राजस समझो।

श्रीभगवान कहते हैं कि '**सर्वेषु भूतेषु**' अर्थात जड़-चेतन सकल पदार्थों में। यहाँ भगवान यह

स्पष्ट करना चाहते हैं कि राजसिक ज्ञान का परिक्षेत्र संपूर्ण विश्व, समस्त सृष्टि ही होती है—सभी प्राणियों में कहने का यही अभिप्राय है।

ऐसा कहने के उपरांत वे आगे कहते हैं कि सभी प्राणियों, पदार्थों में जिस ज्ञान के कारण उनको पृथक-पृथक देखने का भाव विकसित होता है **(यत्, ज्ञानम् पृथक् विधान् नानाभावान् पृथक्त्वेन वेत्ति)**—वह ज्ञान राजसिक ज्ञान कहलाता है, सात्त्विक ज्ञान प्राप्त होने पर एक शाश्वत सत्य की अनुभूति हो जाती है।

तब मान-अपमान, निंदा-प्रशंसा, कृपा-कोप, नाला-गंगाजल—सबमें एक शुद्ध, चैतन्य परमात्मा को देख पाने का ज्ञान विकसित होता है जिसे भगवान ने विगत सूत्र में ऐसा कहकर समझाया कि विनाशशील में अविनाशी को, विभक्त में अविभक्त को देख पाने का ज्ञान जन्म लेता है।

राजसिक ज्ञान में इससे विपरीत भाव जन्म लेता है। सात्त्विक ज्ञान में जगत् के मिथ्या होने का भाव पता चलता है तो राजसिक ज्ञान में जगत् ही सत्य लगने लगता है। इस ज्ञान के कारण व्यक्ति लोगों को, व्यक्तियों को पृथक-पृथक देखता है, जानता है और उसी के आधार पर लोगों से व्यवहार करता है। इसी के कारण उसमें भेद-दृष्टि जन्म लेती है।

इस संदर्भ में आदिगुरु शंकराचार्य के जीवन का प्रसिद्ध कथानक स्मरणीय है। एक बार आचार्य शंकर वाराणसी की पुण्य धरा पर माँ गंगा के दर्शन हेतु जा रहे थे। ज्ञान के शिखर, विवेक-वैराग्य की प्रतिमूर्ति एवं वेदांत के शिरोमणि आचार्य शंकर ने सदा अभेद दृष्टि का प्रवचन किया था।

उस दिन उनकी परीक्षा लेने के उद्देश्य से काशी के अधिपति देवाधिदेव महादेव एक इतर जाति के व्यक्ति का रूप धारण कर उनके मार्ग में उनके सामने आ गए। उन्हें सामने खड़ा देख आचार्य शंकर ठिठककर खड़े हो गए।

महादेव ने भी अपने कदम थाम लिए। आचार्य शंकर ने उन्हें इशारा किया कि वो मार्ग से हट जाएँ, ताकि वे वहाँ से निकल सकें। महादेव ने उनसे प्रश्न किया कि क्या आप मुझे मार्ग से हटने को कह रहे हैं?

आचार्य शंकर के हामी भरने पर महादेव ने पुनः प्रश्न किया कि आप शरीर को हटने को कह रहे हैं या आत्मा को? यह शरीर तो नश्वर है। पंचभौतिक तत्त्वों से निर्मित है। आत्मा शुद्ध, चैतन्य, निर्विकार है—उसे आपके मार्ग से हटाने का उपाय आप ही बताएँ।

मन्यते पायकं कृत्वा न कश्चिद्वेत्ति मामिति।
विदन्ति चैनं देवाश्च यश्चैवान्तः पुरुषः॥

अर्थात पापी मनुष्य पाप करके यह समझता है कि इसे कोई नहीं जानता, परंतु उस पाप को सबके अंदर विद्यमान ईश्वर जानता है।

महादेव की बातें सुनते ही आचार्य शंकर को सत्य की प्रतीति हुई। उनके मन में जहाँ एक ओर ग्लानिबोध जगा कि वो भेद-दृष्टि लिए हुए हैं तो वहीं इतर जाति के व्यक्ति का रूप धरे महादेव के प्रति श्रद्धा का भाव जगा कि उन्होंने उन्हें शाश्वत सत्य से परिचित कराया।

आचार्य शंकर के अभेद-दृष्टि के बोध को प्राप्त होते ही भगवान महादेव अपने असली स्वरूप में प्रकट हुए। यही जीवन का शाश्वत सत्य है कि विभक्त में अविभक्त को देखने वाला व्यक्ति ही सत्य देख पाता है।

(क्रमशः)

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

उपासना-साधना-आराधना (पूर्वार्द्ध)

परमवंदनीया माताजी के उद्‌बोधनों की यह मौलिकता है कि वे भावनाशील व्यक्तित्वों की भावना को उभारते हैं, प्रतिभावानों की प्रतिभा को निखारते हैं, चिंतनशील व्यक्तियों को सोचने पर मजबूर करते हैं तो वहीं साधकों को साधना के लिए प्रेरित करते हैं। उनका यह प्रस्तुत उद्‌बोधन भी एक ऐसे ही भाव को जगाता-उभारता दिखाई पड़ता है। अपने इस मर्मस्पर्शी उद्‌बोधन में परमवंदनीया माताजी कहती हैं कि उपासना, साधकों के जीवन के लिए ध्रुवतारे के समान है। जैसे पथ भटक जाने पर राही ध्रुवतारे का सहारा लेकर सही मार्ग पर आ जाता है—वैसे ही जीवन पथ से भटक जाने पर साधक, उपासना का सहारा लेकर सही पथ पर आ सकते हैं। वंदनीया माताजी आगे उपासना का रहस्य समझाते हुए कहती हैं कि साधकों को उपासना के आध्यात्मिक आधार को अपनाने की आवश्यकता है, जिसमें जपसंख्या न देखकर उसके पीछे की भावना देखी जाती है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को........

हमारे जीवन का संबल—उपासना

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ बोलें—

''ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्''

बच्चो! उस दिन मैंने 'सज्जनों' से संबोधन किया था तो ये बच्चे मुझसे कहने लगे कि माताजी! आपने तो असमंजस उत्पन्न कर दिया। मैंने कहा—भाई! कैसे कर दिया?

उन्होंने कहा कि आज आपके मुँह से पहली बार हमने सज्जनों और देवियों सुना अथवा मातृशक्ति सुना। आपके मुँह से तो हमको वही शब्द सुनने चाहिए थे, जो हम आपके समीप बैठ करके सुनते हैं। बेटे! मेरी समझ में यह बात आ गई।

उन्होंने कहा कि जिस गद्दी पर बैठ करके मैं बोल रही थी तो उसमें मुझे यही संबोधन करना चाहिए था। उस समय मैं भूल रही थी कि ये मेरे बालक बैठे हैं। मेरे बच्चों से यह सहा नहीं गया इसलिए उन्होंने कह दिया। चलिए यह तो उस दिन की बात रही, मैं तो आपसे यह बात कहना चाहती थी कि उपासना हमारे जीवन का संबल है और उपासना हमारी मार्गदर्शक है।

उपासना हमको रास्ता बताती है और उपासना के सहारे हम बड़ी-से-बड़ी मंजिल को पार कर सकते हैं, लेकिन इसमें साधना बेटे! हमारी वो चीज़ है, जैसे जहाज में एक सूई लगी रहती है और वो हमको दिशा बताती रहती है। किसको? जो ड्राइविंग करता है, उसको दिशा बताती रहती है कि उत्तर को जाना है अथवा दक्षिण को जाना है। वो सूई जहाजवालों को मार्ग बताती रहती है, दिशा देती रहती है।

उपासना अर्थात ध्रुवतारा

बेटे! उपासना हमारे जीवन को दिशा देती है, जैसे ध्रुवतारा होता है, अँधेरी रात होती है और

राहगीर उस छोटे से ध्रुवतारे का सहारा ले करके अपनी मंजिल को पा लेता है। चाँद-तारों का नहीं, चाँद-तारे अपनी जगह पर हैं, वो प्रकाश देते हैं, लेकिन उस ध्रुवतारे का सहारा लेकर के राहगीर अपने लक्ष्य को पा लेता है।

तो जो उपासना है, यह ध्रुवतारे के समान है और उस सूई के समान है, जो हमारे जीवन को लक्ष्य की ओर ले जाती है, लेकिन हम दिशाहीन होते हैं। हमको दिशा नहीं मालूम है। हम जो जिधर भटकाव है, उधर ही भेड़चाल में चल पड़े। अभी जब मैं इधर आ रही थी तो रास्ते में देख रही थी कि कई लड़के उधर से आ रहे थे।

कहाँ से? गंगा जी की तरफ से कोई नहाकर आ रहे थे, कुछ गंगाजल लेकर आ रहे थे तो मैंने उनको पढ़ा और देखा कि इनके जीवन में कितनी आस्था का अभाव है कि जहाँ भी आए हैं, इनको यह नहीं मालूम कि पूर्णाहुति का वक्त है या सैर करने का वक्त है।

यह इस वातावरण का प्रभाव है। गंगाजल पीछे भी ला सकते थे, यही समय आपको गंगाजल घर लाने को रह गया था, लेकिन बेटे मैं दिशाहीनता की बात कह रही हूँ। मैं उनकी गलती नहीं बता रही हूँ कि वो गलत हैं; क्योंकि जीवन में उन्होंने साधना को महत्त्व नहीं दिया, उपासना को महत्त्व नहीं दिया, आस्था को महत्त्व नहीं दिया, वे तो जिधर को चले तो भेड़चाल की तरह चल दिए। नहीं बेटे! हमको लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उपासना आवश्यक है, पर मैं तो यह कह रही हूँ कि उपासना से ज्यादा आपको साधना पर ज़ोर देना पड़ेगा।

क्या है साधना?

साधना कैसी? माताजी उपासना साधना तो एक ही बात होती है? नहीं बेटे! दो होते हैं। उपासना हमको मंजिल बताती है और साधना हमको सिखाती है कि अपने ऊपर कड़ाई साधिए। यह जो अनगढ़पन है, बेटे! उसको गढ़िए। किसको गढ़ें? अपने को गढ़िए। तो कैसे गढ़ा जाएगा? ठोंक-पीट करनी पड़ेगी।

अरे बेटे! ठोंक-पीट हथौड़े से नहीं करनी पड़ेगी। ये दिमाग से करनी पड़ेगी और विचारों से करनी पड़ेगी। हम जो कुछ सोचते हैं, जो हमारा निगेटिव चिंतन होता है, निगेटिव इससे हम इधर को चले जाते हैं, उधर को चले जाते हैं। कोई दिशा मिलती है, कोई धारा मिलती है कि नहीं मिलती है। तो बेटे अपने ऊपर कड़ाई करिए।

माताजी? अपने ऊपर कड़ाई कैसे करनी पड़ेगी? चलिए बेटे मैं एक-दो शब्दों में आपको बता देती हूँ कि कड़ाई किसको कहते हैं। कड़ाई वो चीज़ होती है जैसे रूई। रूई धुनी जाती है, वह जितनी धुनी जाएगी, उतनी ही वो फूलेगी। रूई को आप ऐसे ही रख दीजिए तो जैसा रखा था वैसे ही रखा रहेगा और जितना आप धुनेंगे, खूब फूलेगी, फिर चाहे जिसमें भरवा लो, गद्दे भरवा लो, रजाई बनवा लो, तकिये भरवा लो। आपका काम चल जाएगा।

तो बेटे! धुनना, अपने आप की रँगाई करनी और अपनी पिटाई करनी पड़ेगी। पिटाई करना, माताजी! आप यह क्या कह रही हैं? हमें सारी जिंदगी पिटाई करनी पड़ेगी। आपको इस अनुष्ठान में ही करना पड़ा हो अथवा कर रहे हों, इतना ही पर्याप्त नहीं, वो तो आपको जीवनपर्यंत तक अपनी धुलाई, रँगाई करनी पड़ेगी, जैसे बेटे गुरुजी ने अपने साथ में कैसी कड़ाई की।

अभी आपको कड़ाई नहीं मालूम पड़ रही है क्या? जो अभी भी 75 साल की आयु में भी बेटे कितनी कड़ाई करते हैं कि आप हैरान हो जाएँगे। जब मैं शाम को जाती हूँ तो बेटे मुझसे देखा नहीं जाता; जो हर समय अपने परिजनों से घिरे रहे,

उपासना से उठे, साधना की, लेखन किया, अपने बच्चों से जो वायदा किया, जो समाज से वायदा किया है, उस वायदे को निभाने के लिए जुट गए। जुकाम, खाँसी सबको होते हैं। उनके जीवन में भी कई क्षण ऐसे आए तो प्रकृति के लिए क्या कह सकते हैं?

बेटे! सरदी-जुकाम भी होता है, लेकिन बेटे उन्होंने अपने साथ में इस कदर की कड़ाई की कि जिस दिन शरीर ने गड़बड़ी की, हमेशा जितना लिखते थे, उस दिन आधा फार्म-पौन फार्म ज्यादा लिखा जाता था। उस दिन बैठे तो डेढ़ फार्म या उससे दूना लिख डालते थे।

अब आप कड़ाई का हिसाब लगा लीजिए। हमारे और आपके सिर में दरद हो और हमको और आपको बुखार आ जाए या जुकाम हो जाए तो हम और आप क्या करेंगे? ज़रा बताइए। चारपाई पर लेटने के अलावा क्या करेंगे? और बेटा उनका ठीक उलटा दूना काम करना, ये क्या बात हुई? यह बेटे साधना है।

उसका चमत्कार भी अभी आपको बताऊँगी। इस उम्र में भी उन्होंने कितना कठोरतम व्रत लिया है और तपस्या कर रहे हैं। क्या आप आँक पाएँगे? नहीं बेटे आपकी जो स्थूल आँखें हैं, आपकी स्थूल आँखें नहीं देख पाएँगी, लेकिन जिनकी आँखें सूक्ष्मदर्शी हैं, उनको अनुभव होता है, आपको कैसे हो जाएगा? उनको हो रहा है, किनको? गुरुदेव को हो रहा है। कैसा अनुभव हो रहा है कि सारे संसार का जो भयावह दृश्य है, उनको दिखाई पड़ रहा है और हमको-आपको नहीं दिखाई पड़ रहा है।

गुरुदेव का सूक्ष्मशरीर

बेटे! उनका सूक्ष्मशरीर काम कर रहा है, जो सारे वातावरण पर छाया हुआ है और देख रहा है। अभी मैं आपको आगे बताऊँगी कि कल के पेपर में पढ़ा गया कि अमेरिका और पाकिस्तान ने ये धमकी दी है। किसको? हिंदुस्तान को दी है कि जरा भी सिर उठाया तो देख लेंगे। इसका मतलब बेटे कि वे हथियारों से संपन्न हैं और एटम बमों से संपन्न हैं, इसलिए उन्होंने सिर उठाया और कह दिया।

तो वो दृश्य आपको दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन ऊपर बैठे वह दृश्य उनको दिखाई पड़ रहा है। पंजाब की हालत और काश्मीर की हालत और बेटे! आपके आंध्र की हालत आपसे छिपी है क्या? ये प्रांत तो घर-के-घर में ही मरे जा रहे हैं। इन प्रांतों में घर-के-घर में ही लड़ाई हो रही है, तो बाहर वाले चढ़ेंगे नहीं तो और क्या करेंगे?

जब देखते हैं कि घर में आग लग रही है तो बेटे बाहर वाले भी चढ़ जाते हैं। क्यों चढ़ जाते हैं? अभी कही एक्सीडेंट हुआ था तो मैंने सुना था कि जिन बेचारों की लाशें थी पड़ी थीं, इन जाहिलों के मन में यह उदारता नहीं आई, दया नहीं आई कि इन्हें गाड़ी में से निकालकर कहीं सुरक्षित रख दें। बल्कि किसी का पाकेट उठाकर रखना चाहिए, किसी की घड़ी उतारनी चाहिए, किसी के गले में से चेन उतारनी चाहिए। बेटे क्या करते हैं, ये क्या बात हुई? दूसरे हावी हो जाते हैं।

हाँ बेटे! गिरे के ऊपर हावी हो जाते हैं और उठने वाले के ऊपर सहारा देते हैं, तो वो दृश्य उनको दिखाई पड़ता है। मुझसे बच्चे पूछते रहते हैं कि गुरुदेव को इतनी कठिन तपस्या करने की क्या आवश्यकता थी? हाँ बेटे! आज का जो वातावरण है, उसको देखते हुए उन्होंने आवश्यक समझा कि अपनी शक्ति को संग्रह किया जाना चाहिए। जब तक शक्ति का संग्रह नहीं होगा, बेटे तो खरच कहाँ से करिएगा?

पूँजी हाथ में थोड़ी होगी तो बेटे थोड़ी के हिसाब से ही किया जाएगा। बाप कमाता है, माँ खरच करती है और जब थोड़ा कम आएगा तो उसे उसी में से गुजारा करना पड़ेगा, ज्यादा आएगा तो खुले हाथ से खरच करेगी।

वैसे तो माँ पिता से ज्यादा होशियार होती है, मैंने ऐसा सुना है। क्यों होती है, मैं तुम्हें अभी बताती हूँ कैसे होती है। पिता कमाता है और हर महीने गृहिणी के हाथ में रख देता है। घर खरच के लिए 500 रुपये लाया और हाथ में रख दिया और कहा कि देखो भाई! ठीक एक महीने में मैं आपसे हिसाब ले लूँगा।

जी साहब! आप क्या कह रहे हैं, मैं तो आपको बराबर हिसाब दूँगी। बेटे उसने लिस्ट बनाई और कॉपी में लिखना शुरू किया और 500 रुपये के बजाय 550 रुपये लिख दिए। उसने कहा कि तुमने यह क्या किया? जी साहब! आपको मालूम नहीं है, देखिए कितनी महँगाई है, इतने से काम चलता है क्या? यह तो 50 रुपये मैं पड़ोसिन से उधार लाई थी, मुझे देने हैं; बेचारा चुप हो जाता है, ठीक ही कह रही होगी।

पर बेटे, वो क्या करती है? वो होशियार है और उस 500 में से 50 रुपये बचाकर अपने पॉकेट में रख लेती है। क्यों रख लेती है? बेटे, नियत में कोई खराबी होती है क्या? नहीं, बेटे! नियत में खराबी नहीं होती। उसमें एक बात होती है कि मेरे इतने सारे बच्चे हैं और कहीं मैं गई और बच्चे मेरे साथ गए तो कहेंगे मम्मी हमें तो गुब्बारा दिलवा दे, मम्मी हमें तो टॉफी दिलवा दे, तो मैं इनको कहाँ से दिलवा दूँगी।

मेरे पास नहीं होंगे तो कहाँ से आएगा? बेटे मेरा भी यही ढंग है, मैं क्या करूँ? वो तो बहुत उदार हैं, जो लाते हैं, वही खरच कर देते हैं, पर मैं कभी-कभी कंजूसी कर लेती हूँ, कभी बचा लेती हूँ। बचाना पड़ता है, न मालूम किसके लिए मुझे खरच करना पड़ेगा?

शक्ति का अर्जन

बेटे, उस शक्ति की अभी कमी आ रही थी। आप लोगों को मालूम है कि कलम बंद हुई तो वो जबान शुरू हो गई। कब तक? 12 बजे से लेकर 6 बजे तक और भी कुछ हुआ तो मैं समझती हूँ

विलंब सूचना

विगत काफी समय से डाक-व्यवस्था चरमरा रही है। पाठकों तक समय से अखण्ड ज्योति नहीं पहुँच रही है। 31 जुलाई, 2025 से डाकघर का नया सॉफ्टवेयर प्रारंभ होने पर लंबे समय तक बुकिंग नहीं हुई। अभी भी डाकघर में अखण्ड ज्योति पड़ी है। अगस्त, सितंबर, अक्टूबर की प्रतियाँ भी अति विलंब से गई हैं।

डाक विभाग के अधिकारियों से निरंतर संपर्क किया जा रहा है— आश्वासन मिल रहे हैं। अभी भी कार्य की गति धीमी है। कब तक समाधान हो सकेगा, कुछ पता नहीं।

पाठकों को हुई असुविधा के लिए हमें खेद है। आशा है, जल्दी ही स्थिति सामान्य होगी। पाठकों को उनकी प्रिय अखण्ड ज्योति समय से मिल सकेगी।

कि और भी उसका टाइम बढ़ गया। वो नौ से दस हो गया। तो आखिर यह बताइए कि जब हमारी शक्ति हर समय चुकती जाएगी तो वो आएगी कहाँ से? कोई मार्ग भी तो हो, कोई जगह भी तो हो।

बेटे! कहाँ से आएगी वो शक्ति? इसे इकट्ठा करने के लिए बेटे उन्होंने मौन व्रत धारण किया। मौन, बातचीत बिलकुल बंद। आपको शायद निराशा हुई होगी, आपके अपने मन में दुःख भी हुआ होगा। कि हम आए और गुरुजी के दर्शन नहीं मिले और जैसा कि हमारे बच्चे अभी ये कह रहे थे कि हम अपनी व्यथा किसे सुनाएँ? गुरुदेव आपके पास आ करके भी अब हम खाली हाथ जाएँगे क्या? नहीं बेटे ऐसा कोई भी खाली हाथ जाने वाला नहीं है।

गुरुजी ने मुझे आपके दुःख-दरद और पीड़ा को सुनने के लिए और मदद के लिए बैठाया है। बेटे, आपकी मदद के लिए हर क्षण गुरुजी आपके साथ रहेंगे और बेटे! यह माँ भी आपके साथ रहेगी। माँ के अंदर से वो करुणा और उदारता और ममता चली जाए तो बेटे उसको आप माँ नहीं कह सकते। फिर तो जाने उसका क्या रूप होगा, हम नहीं कह सकते।

बेटे! मैं उनके तप की आपको थोड़ी-सी झलकी दिखा रही थी। ये मौन किसलिए? एकाकी जीवन की ज़रा बेटे कल्पना तो करिए, बेटे! आप घबरा जाएँगे, मैदान छोड़कर भाग जाएँगे, लेकिन बेटे वो संकल्प है, गुरु को दिया गया वचन है, वो निभाना है और जो समाज के लिए और राष्ट्र के लिए हमको करना है वो तो करेंगे-ही-करेंगे। बेटे! वो संकल्प और वो हिम्मत और वो रूहानियत वो करा रही है, जो बिलकुल एक मिनट चुप नहीं रह सकते।

ज़रा कल्पना तो करिए कि 24 घंटे कैसे व्यतीत होते होंगे? बेटे मुझे थोड़ा-बहुत भी चुप बैठना पड़ता है, नीचे से ऊपर जाती हूँ और देखती हूँ तो मुझे ऐसा लगता है कि मैं यहाँ कौन-से लोक में आ गई हूँ। दूसरा लोक मालूम पड़ता है बेटे और मेरी भी वही स्थिति हो जाती है। उस समय मैं समाधि में, किसी और लोक में, वेदना के लोक में पहुँच जाती हूँ।

उपासना का रहस्य

उनका चिंतन सारे विश्व का चलता है, पर मैं क्या करूँ? बेटे! मेरी यह जो संवेदना है, वो मुझे प्रत्यक्ष देखने के लिए कहते हैं और मैं अपने आप में ऐसी खो जाती हूँ, ऐसी हो जाती हूँ कि मुझे नहीं मालूम वो घंटे कैसे व्यतीत हो जाते हैं। ये मैंने क्या बताया?

बेटे, मैंने यह उपासना, साधना का चमत्कार आपको बताया। साधना में उन्होंने अपने को साधा, उपासना 6 घंटे नित्यप्रति पहले भी उन्होंने की और हमेशा उनकी उपासना चलती रही है, पर उससे ज्यादा बेटे उन्होंने अपने लिए कड़ाई की है। यही उपासना का रहस्य है।

उपासना का यही रहस्य बेटे हमको आगे बढ़ाने का कार्य करता है। हम सब कुछ उपासना को ही समझ लेंगे तो अरे साधेंगे कब और जब तक साधेंगे नहीं तो आप कोई काम नहीं कर पाएँगे। बिलकुल नहीं कर पाएँगे। साधना माने अपने आप को गढ़ना है।

माताजी! अपने को कैसे गढ़ना है? ऐसे गढ़ना है, चलिए मैं आपको उदाहरण देती हूँ। देखो बेटे? जब तक भगवान हमारे जीवन में नहीं आता, तब तक हम जैसे हैं, वैसे ही बने रहते हैं और जब भगवान का प्रकाश हमारे अंदर आ जाता है तो बेटे, हम कुछ और हो जाते हैं। कुछ और कैसे हो जाते

हैं ? ऐसे हो जाते हैं जैसे सूरदास हो गए थे। वे कैसे हो गए थे ?

बेटे! जब तक भगवान नहीं था तो वे वेश्यागामी थे। जब भगवान उनके अंत:करण में आ गया तो उन्होंने कहा कि ये गंदी आँखें हैं। बहन-बेटी को बुरी नजर से देखने से बाज नहीं आएँगी।

क्या बाज आना चाहिए ? नहीं आएँगे। उन्होंने कहा—हम नहीं आएँगे। सारी जिंदगी जिस रास्ते पर चले हों, उस भटकाव को रोकिए और नहीं रुकेगा तो बेटे ये सारी जिंदगी को तबाह कर देगा।

बेटे! सूरदास ने क्या किया? अपनी दोनों आँखों को गरम सलाखों से उन्होंने फोड़ दिया। उन्होंने कहा—अब तो मानेंगी ये बेईमान आँखें। अब तक हमारी सारी जिंदगी का रस निचोड़ दिया, अभी भी तुम्हें संतोष नहीं हुआ, हमारी जिंदगी को और तबाह करेंगी ? बेटे! उन्होंने आँखें फोड़ लीं।

अरे माताजी! आप ये क्या कह रही हैं। तो क्या हमको भी आँखें फोड़नी पड़ेंगी ? बेटे! हाड़-मास की आँखों को फोड़ने के लिए मैं नहीं कह रही हूँ कि आप इन आँखों को फोड़िए, लेकिन अपनी दिशा को पलटिए। जब नाव नदी में जाती है तो बेटे क्या करती है ? "किश्ती ने मोड़ा रुख, किनारे बदल गए।" बेटे! इधर को न जा करके उधर को जब हम चल दिए तो हमारी सारी दिशा और किनारा बदल जाता है। जब किसी का किनारा मुड़ जाता है तो वहीं से मनुष्य का जीवन बदल जाता है।

जब यह सोच लेते हैं कि हमारा अब तक जो नारकीय जीवन व्यतीत हुआ है, लेकिन अब नहीं व्यतीत होगा। अब हमको संबल मिल गया है, किनारा मिल गया है, हमको रास्ता मिल गया है और हमें मार्गदर्शक मिल गया है, जो हमको कहीं-से-कहीं ले जा करके ऊँचे-से-ऊँचा भक्त बना सकता है। ऊँचे-से-ऊँचा हमें समाजसेवी बना सकता है तो हम अपनी स्थिति को क्यों न बदलें।

(क्रमशः)

दो कुत्ते आस-पड़ोस के मकानों में रहते थे। पहले के मालिक ने मकान पर पीला रंग चढ़वाया था और दूसरे ने सफेद। दोनों कुत्ते एकदूसरे से अपने मकान के रंगों की नापसंदगी जाहिर करते रहते और दूसरे के रंगों के प्रति अपना रुझान प्रकट करते। कुछ समय पश्चात ऐसा संयोग हुआ कि पहले मालिक ने अपने मकान पर सफेद रंग चढ़वा लिया और दूसरे ने पीला, पर कुत्तों की शिकायत का अंत नहीं हुआ और वे अब इन रंगों की शिकायत करते हुए भौंकने लगे।

एक कछुआ उधर से निकला और सारी कहानी सुनकर हँसने लगा और बोला—"सृष्टि का नियम परिवर्तन है। जो बदलती परिस्थितियों के साथ सामंजस्य बैठा लेते हैं, वे सुखी रहते हैं और सदैव असंतुष्ट रहने वाले दुःख पाते हैं।

विश्वविद्यालय परिसर से –245

राष्ट्र जागरण की नींव रखता विश्वविद्यालय

देव संस्कृति विश्वविद्यालय सदैव अपनी समृद्ध गुरु-शिष्य परंपरा और मूल्य-आधारित शिक्षा के लिए जाना जाता है। हाल ही में विश्वविद्यालय ने अनेक महत्त्वपूर्ण शैक्षणिक, सांस्कृतिक एवं अंतरराष्ट्रीय कार्यक्रमों का सफल आयोजन कर अपनी बहुआयामी गतिविधियों का परिचय दिया।

गुरु-शिष्य की अनुपम परंपरा से ओत-प्रोत देव संस्कृति विश्वविद्यालय में नवीन सत्रारंभ के उपलक्ष्य में 45वाँ ज्ञानदीक्षा संस्कार समारोह अत्यंत गरिमामय वातावरण में संपन्न हुआ। यह समारोह मृत्युंजय सभागार में आयोजित हुआ, जिसमें नवप्रवेशी छात्र-छात्राओं को आध्यात्मिक शिक्षा, नैतिक मूल्यों, सांस्कृतिक गौरव और व्यक्तित्व निर्माण की ओर प्रेरित किया गया।

कार्यक्रम का शुभारंभ अतिथियों के स्वागत एवं दीप प्रज्वलन के साथ हुआ। कुलगीत के मधुर स्वरों से पूरे वातावरण में नव ऊर्जा का संचार हुआ। तत्पश्चात विश्वविद्यालय के कुलपति श्री शरद पारधी जी ने स्वागत भाषण में नवागंतुक विद्यार्थियों को शुभकामनाएँ दीं।

ज्ञानदीक्षा संस्कार का पावन अनुष्ठान परमश्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पंड्या जी के ऑनलाइन सान्निध्य में संपन्न हुआ। उन्होंने वैदिक विधि द्वारा नवप्रवेशी छात्र-छात्राओं को दीक्षित किया तथा संस्कृति, साधना और सेवा के त्रिविध मूल्यों से जुड़ने का आह्वान किया। इसके पश्चात प्रतिकुलपति जी ने विश्वविद्यालय की परंपरा, आदर्श एवं ज्ञानदीक्षा की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए विद्यार्थियों को आत्मविकास और राष्ट्रनिर्माण के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया।

विशिष्ट अतिथि वक्तव्य में डॉ० सुनील राय जी कुलाधिपति, पेट्रोलियम एवं ऊर्जा अध्ययन विश्वविद्यालय, देहरादून ने विद्यार्थियों को ज्ञान के साथ-साथ सेवा, शोध एवं राष्ट्रनिर्माण में उत्कृष्ट योगदान हेतु प्रेरित किया। वहीं मुख्य अतिथि के रूप में महंत बालकनाथ योगी, प्रमुख, नाथ संप्रदाय एवं कुलाधिपति, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय (रोहतक, हरियाणा) ने भारतीय ज्ञान परंपरा, गुरुकुल प्रणाली और चरित्र निर्माण के महत्त्व पर अपने विचार रखे।

समारोह के अंत में नवप्रवेशी छात्र-छात्राओं को प्रतीकचिह्न प्रदान किए गए। सभी अतिथियों को स्मृतिचिह्न भेंट कर आभार प्रकट किया गया तथा शांतिपाठ के साथ यह प्रेरणास्पद समारोह संपन्न हुआ।

विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय को सामुदायिक सहभागिता हेतु क्षमता अभिवर्द्धन विषय पर राष्ट्रीय कार्यशाला आयोजित करने का गौरव प्राप्त हुआ। इस दो दिवसीय कार्यशाला में देश भर से प्रख्यात शिक्षाविदों, शोधकर्त्ताओं एवं नेतृत्वकर्त्ताओं ने सहभागिता की।

कार्यशाला का शुभारंभ दीप प्रज्वलन एवं औपचारिक उद्घाटन के साथ हुआ। उद्घाटन सत्र में विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी की उपस्थिति रही। उन्होंने राष्ट्रनिर्माण में सामुदायिक सहभागिता की भूमिका पर अपने प्रेरक विचार प्रस्तुत किए और अपने दूरदर्शी संबोधन से सभी प्रतिभागियों को नई दिशा प्रदान की।

कार्यशाला में विभिन्न विषयों पर विमर्श हुआ, जिनमें विभिन्न विषयों पर डॉ० संतोष कुमार (एम्स, ऋषिकेश), प्रो० आनंद प्लप्पल्ली

(आईआईटी जोधपुर) तथा विभिन्न संस्थानों से आए प्रतिभागियों की प्रस्तुतियाँ शामिल थीं, जिनकी अध्यक्षता प्रतिष्ठित शिक्षाविदों डॉ० विवेक श्रीवास्तव एवं डॉ० राजकुमार सतंकर ने की।

इसके अतिरिक्त कार्यशाला में नादयोग साधना, देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर के आध्यात्मिक भ्रमण, शांतिकुंज दर्शन एवं यज्ञ अनुभव ने अकादमिक चर्चा को गहन आध्यात्मिक अनुभवों से जोड़ दिया।

विगत दिनों विश्व फोटोग्राफी दिवस के अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग द्वारा विश्वविद्यालय स्तरीय फोटोग्राफी प्रतियोगिता लेंस-ए-उत्कर्ष का आयोजन किया गया। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने अपनी गरिमामयी उपस्थिति से कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई।

कार्यक्रम को छात्रों से अत्यधिक उत्साहपूर्ण प्रतिसाद प्राप्त हुआ, जहाँ प्रतिभागियों ने अपनी रचनात्मकता और दृष्टिकोण को उत्कृष्ट फोटोग्राफ्स के माध्यम से अभिव्यक्त किया। इन कृतियों की प्रदर्शनी लगाई गई, जिन्हें सभी ने सराहा। प्रतिकुलपति जी ने विजेताओं को पदक एवं प्रमाणपत्र प्रदान कर सम्मानित किया और युवा फोटोग्राफरों को इस कला को समर्पण एवं जुनून के साथ निरंतर आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित किया।

हाल ही में विश्वविद्यालय स्थित एशिया के प्रथम बाल्टिक संस्कृति एवं अध्ययन केंद्र द्वारा ब्रिजिंग होराइजन्स इंडिया एंड लातविया इन अ ग्लोबलाइज्ड वर्ल्ड विषय पर एक वैश्विक सम्मेलन का सफल आयोजन किया गया।

प्रतिकुलपति जी के मार्गदर्शन में आयोजित इस सम्मेलन ने भारत और लातविया के बीच मित्रता के संबंधों को सुदृढ़ करने हेतु एक सशक्त मंच प्रदान किया।

सम्मेलन में सांस्कृतिक संबंध एवं कूटनीतिक संवाद, शैक्षणिक सहयोग, स्वतंत्रता का उत्सव, वैश्विक परिप्रेक्ष्य तथा समग्र शिक्षा एवं सतत विकास जैसे महत्त्वपूर्ण आयामों पर विचार-विमर्श हुआ। इस अवसर पर लातविया की पुनः प्राप्त संप्रभुता का उत्सव भी मनाया गया और दोनों देशों की साझा दृष्टि वैश्विक सद्भाव, सतत प्रगति एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान को रेखांकित किया गया।

गणमान्य जनों के आगमन के क्रम में हाल ही में देव संस्कृति विश्वविद्यालय को यह विशेष अवसर प्राप्त हुआ कि विश्व बैंक समूह के वरिष्ठ सलाहकार एवं जिनेवा स्थित धर्मा अलायंस के संस्थापक श्री प्रशांत शर्मा जी ने विश्वविद्यालय का भ्रमण किया। धर्मा अलायंस एक वैश्विक पहल है, जो विकास की मुख्यधारा में नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का समावेश करने के लिए सतत प्रयासरत है।

अपने इस विशेष प्रवास के दौरान श्री शर्मा जी ने विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से भेंट की। इस अवसर पर दोनों के मध्य एक अत्यंत सार्थक संवाद हुआ, जिसमें आध्यात्मिकता, नीतिगत सोच एवं सतत विकास के संगम पर गहन विचार-विमर्श हुआ। इस संवाद के माध्यम से यह प्रतिपादित किया गया कि प्राचीन भारतीय ज्ञान-परंपराएँ आज के वैश्विक संकटों का समाधान प्रदान करने में सक्षम हैं, बशर्ते उन्हें नेतृत्व और नीति-निर्माण की प्रक्रिया में संवेदनशीलता एवं दूरदृष्टि के साथ सम्मिलित किया जाए।

इसी क्रम में विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय में उत्तर प्रदेश सरकार के कृषि, कृषि शिक्षा एवं कृषि अनुसंधान विभाग के माननीय मंत्री श्री सूर्य प्रताप शाही जी का सपरिवार स्वागत किया गया। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से शिष्टाचार भेंट के दौरान शिक्षा, कृषि विकास, ग्रामोत्थान एवं मूल्याधारित नेतृत्व जैसे विविध विषयों पर सारगर्भित चर्चा हुई।

मंत्री महोदय ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय की शैक्षणिक गतिविधियों एवं युग निर्माण आंदोलन की प्रेरणाओं से गहन रूप से प्रभावित होते हुए इसे आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में एक महत्त्वपूर्ण संस्थान बताया। उन्होंने भविष्य की नीतियों में आध्यात्मिकता और नैतिकता के समावेश की आवश्यकता को विशेष रूप से रेखांकित किया तथा पूज्य गुरुदेव के विचारों की सराहना की।

विगत दिनों विश्वविद्यालय में पद्मश्री श्री विजयदत्त श्रीधर जी, संस्थापक, माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल का स्वागत किया गया। अपने इस विशेष प्रवास के दौरान उन्होंने प्रतिकुलपति जी से भेंट की। इस भेंटवार्त्ता में भारतीय पत्रकारिता की परंपराएँ, सांस्कृतिक चेतना का संवर्द्धन, शिक्षा में नैतिक मूल्यों का समावेश तथा युग निर्माण में मीडिया की सशक्त भूमिका जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर चर्चा हुई।

उत्तर प्रदेश सरकार में जल शक्ति मंत्रालय के कैबिनेट मंत्री, श्री स्वतंत्र देव सिंह जी का देव संस्कृति विश्वविद्यालय की पावन भूमि पर सपरिवार स्वागत किया गया। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से शिष्टाचार भेंट के दौरान जल संरक्षण, पर्यावरण संतुलन, शिक्षा एवं ग्रामोत्थान जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर गहन एवं सारगर्भित संवाद हुआ।

पूज्य गुरुदेव के विचारों एवं युग निर्माण आंदोलन की प्रेरणाओं से अभिभूत होकर माननीय मंत्री महोदय ने विश्वविद्यालय तथा शांतिकुंज की गतिविधियों की सराहना की और इसे समाज एवं राष्ट्रनिर्माण की दिशा में एक प्रेरक संस्था के रूप में अभिव्यक्त किया।

हाल ही में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में योग, भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रहित के सशक्त प्रवक्ता श्री एस० के० तिजारावाला जी का स्वागत किया गया। अपने इस विशेष प्रवास के दौरान श्री तिजारावाला जी ने विश्वविद्यालय परिसर का अवलोकन किया तथा यहाँ के शैक्षणिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक वातावरण को अनुभव किया।

इस अवसर पर उन्होंने विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से भेंट की और समाज निर्माण, युवाओं में नैतिक जागरूकता तथा भारतीय संस्कृति के वैश्विक प्रसार जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर विस्तार से विचार-विमर्श किया।

विगत दिनों भारत गौरव अवॉर्ड्स के अध्यक्ष श्री सुरेश मिश्रा जी का भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय में स्वागत किया गया। इस दौरान प्रतिकुलपति जी के साथ उनकी सारगर्भित चर्चा हुई, जिसमें शिक्षा, संस्कृति संवर्द्धन, भारतीय मूल्य एवं वैश्विक स्तर पर भारत की गरिमा स्थापित करने जैसे विषय प्रमुख रहे।

इसी क्रम में वाडिया इन्स्टीट्यूट ऑफ हिमालयन जियोलॉजी, देहरादून के निदेशक डॉ० विनीत के० गहलौत का देव संस्कृति विश्वविद्यालय में स्वागत किया गया। अपने आगमन के अवसर पर उन्होंने विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से भेंटवार्त्ता की। इस दौरान भू-विज्ञान अनुसंधान, सहयोग तथा पर्यावरणीय चुनौतियों के समाधान में शिक्षा की भूमिका जैसे विषयों पर सारगर्भित चर्चा हुई।

विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय के पावन परिकर में राजस्थान राज्य वित्त आयोग के अध्यक्ष एवं राजस्थान के पूर्व प्रदेशाध्यक्ष श्री अरुण चतुर्वेदी जी का स्वागत किया गया। अपने इस विशेष आगमन पर उन्होंने विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से शिष्टाचार भेंट की।

हाल ही में गुजरात सरकार के जनजाति विकास विभाग के माननीय मंत्री डॉ० कुबेर डिन्डोर जी का देव संस्कृति विश्वविद्यालय में सपरिवार स्वागत किया गया। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से उनकी शिष्टाचार भेंट हुई। भेंटवार्त्ता के दौरान शिक्षा, जनजातीय समाज के

सर्वांगीण विकास, संस्कृति संरक्षण, ग्रामोत्थान तथा मूल्य-आधारित नेतृत्व जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर सारगर्भित एवं गहन चर्चा हुई।

पूज्य गुरुदेव के विचारों और युग निर्माण आंदोलन की प्रेरणाओं से प्रभावित होकर माननीय मंत्री महोदय ने विश्वविद्यालय एवं शांतिकुंज की विविध गतिविधियों की सराहना की। उन्होंने इन्हें सामाजिक परिवर्तन तथा आत्मनिर्भर भारत के सशक्त वाहक के रूप में अभिव्यक्त किया।

विगत दिनों विश्वविद्यालय में नीदरलैंड से आए 18 छात्रों का दल सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आदान-प्रदान कार्यक्रम के अंतर्गत पहुँचा। प्रतिनिधिमंडल ने विश्वविद्यालय के अद्वितीय शैक्षणिक एवं आध्यात्मिक परिवेश का अनुभव किया। छात्रों ने भारतीय जीवनमूल्यों, योगिक परंपराओं तथा वैज्ञानिक अध्यात्म से स्वयं को परिचित कराया।

भ्रमण के दौरान प्रतिनिधिमंडल को प्रतिकुलपति जी से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। प्रतिकुलपति जी ने अपने मार्गदर्शन एवं आशीर्वचनों से विद्यार्थियों को प्रेरित किया। इस संवाद में वैश्विक सहयोग, सांस्कृतिक समरसता तथा आज के समय में समग्र शिक्षा की प्रासंगिकता जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर चर्चा हुई।

हाल ही में दक्षिण-पूर्व एशिया के वियतनाम से आए 22 सदस्यीय प्रतिनिधिमंडल ने हाल ही में देव संस्कृति विश्वविद्यालय का भ्रमण किया। यह प्रतिनिधिमंडल भारतीय संस्कृति और ज्ञान परंपराओं के अमूल्य खजाने को निकट से जानने की गहरी जिज्ञासा के साथ यहाँ पहुँचा।

अपने आगमन पर प्रतिनिधिमंडल को विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। प्रतिकुलपति जी ने स्वागत करते हुए उन्हें मार्गदर्शन प्रदान किया। प्रतिनिधिमंडल का यह विशेष भ्रमण भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्य, योग की रूपांतरणकारी साधनाएँ, यज्ञ का पवित्र विज्ञान तथा वैज्ञानिक अध्यात्म की दार्शनिक दृष्टि, जो देव संस्कृति विश्वविद्यालय की मूल आधारशिला है, को समझने एवं आत्मसात् करने पर केंद्रित रहा।

विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आयोजित अंतरराष्ट्रीय कार्यशाला में नेपाल से आए प्रतिनिधिमंडल ने सहभागिता की। अपने प्रवास के दौरान प्रतिनिधिमंडल को विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। इस संवाद में आध्यात्मिकता, सांस्कृतिक आदान-प्रदान एवं मूल्याधारित शिक्षा की भूमिका जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर गहन चर्चा हुई।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं म्यूजिक थेरेपी सेल एंड रिसर्च सेंटर, मनोविज्ञान विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी के बीच एक महत्त्वपूर्ण समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए। इस अनुबंध का उद्देश्य संगीत चिकित्सा, मानसिक स्वास्थ्य, मनोवैज्ञानिक कल्याण एवं समग्र विकास के क्षेत्र में वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकीय एवं शैक्षणिक सहयोग को बढ़ावा देना है।

यह अनुबंध देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी एवं डॉ० दुर्गेश के० उपाध्याय (समन्वयक, एमटीसीआरसी, एमजीकेवीपी, वाराणसी) द्वारा औपचारिक रूप से हस्ताक्षरित किया गया। इस सहयोग के अंतर्गत संगीत चिकित्सा एवं वैज्ञानिक अध्यात्म के क्षेत्र में संयुक्त शोध एवं विकास, विशेषज्ञता और संसाधनों का आदान-प्रदान, कार्यशालाओं, सेमिनारों एवं सम्मेलनों का आयोजन, संकाय प्रशिक्षण एवं शैक्षणिक विनिमय, नवोन्मेषी संगीत-आधारित उपचार पद्धतियों का विकास तथा संयुक्त प्रकाशन एवं राष्ट्रीय/अंतरराष्ट्रीय परियोजनाओं में सहभागिता जैसे कार्य शामिल हैं।

यह अनुबंध वैज्ञानिक अध्यात्म एवं संगीत चिकित्सा के एकीकरण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है, जो व्यक्तिगत एवं सामाजिक कल्याण के लिए दूरगामी प्रभाव डालेगा। □

साधना शताब्दी—विशिष्ट लेखमाला

उद्योग व्यापार का बदलता स्वरूप

उद्योग व्यापार का बदलता स्वरूप सतयुग का सत्य बनेगा। अब और तब में इसके अनेकों आयाम बदलते हुए देखे जा सकेंगे। अभी की स्थिति में उद्योग हो या व्यापार, दोनों धन-संवर्द्धन का साधन बन गए हैं। धनवान को और अधिक धनवान बनना है, इसीलिए वह व्यापार और बाजार को अपनाता है। उसे जनसुविधा के स्थान पर धन-सुविधा की कहीं अधिक चिंता है। इसकी सार्थकता बस, विज्ञापनों में वितरित हो रही है। यथार्थ में इसका असर व प्रभाव उतना नहीं है।

जमाखोरी और मुनाफाखोरी को जैसे सभी ने अपना कर्त्तव्य व अधिकार बना लिया है। सरकारी नियमों व सरकारी टैक्स से लुका-छिपी खेलना इन सभी की आदत बन गई है। सफलता और समृद्धि के लिए अनीति अपनाने में किसी को न तो कोई हर्ज है और न ही फरक। जब धन ही ध्येय बन जाए, तो फिर वही होना चाहिए, जो हो रहा है। वही करना चाहिए, जो किया जा रहा है।

आज की स्थिति का सत्य भले इतना ही हो, पर ऐसा होना न उपयोगी है और न वांछित है। उद्योग और व्यापार अपने वास्तविक अर्थ में उत्पादन और वितरण हैं। जीवन के लिए आवश्यक आवश्यकताएँ, सुविधाएँ अनेकों हैं। यदि इनके छोटे-बड़े सभी रूपों को गिना जाए, तो इनकी संख्या हजारों में नहीं, लाखों में पहुँचेगी। इन सभी का उत्पादन करने के लिए ही उद्योग हैं।

बात जब इन उपयोगी उत्पादनों के वितरण-विक्रय की आती है, तो व्यापार-बाजार और व्यवसाय के अनेकों रूप उभरकर सामने आते हैं। इनके बिना तो जीवन पूरी तरह ठप हो जाएगा। एक दिन भी इनके बिना काटना कठिन हो जाएगा। जीवन-व्यवस्था के लिए उद्योग व व्यापार, दोनों का ही व्यवस्थित रहना जरूरी है। इसमें किसी भी तरह का व्यतिक्रम या व्यवधान जीवन को अपाहिज, असहाय व असमर्थ बना देता है।

यह स्थिति किसी एक क्षेत्र, प्रांत व देश की नहीं है। यह पूरी दुनिया और सारी धरती का सत्य है। इसलिए यदि देश व दुनिया को सँवरना है तो उद्योग व व्यापार को सबसे पहले सुधरना होगा। परिस्थिति में परिवर्तन आवश्यक है। इसके लिए उद्योग-व्यापार के अधिपतियों एवं इससे जुड़े लोगों की मन:स्थिति भी बदलना जरूरी है। धन कमाया जाना चाहिए, पर साथ में जन-जीवन भी स्वस्थ, सकुशल और खुशहाल होना चाहिए।

मिलावट स्वास्थ्य का नाश करती है और यदि यह मिलावट दवाओं में हो गई, तो फिर जीवन को मृत्यु में बदलने में थोड़ा-सा भी संदेह नहीं रह जाता। इसी तरह जमाखोरी किसी को सकुशल नहीं रहने देती। व्यापार के कर्त्ता-धर्ता प्राय: बाजार भाव बढ़ाने के लिए जमाखोरी का सहारा ले लेते हैं और बढ़ती महँगाई में भला कोई सकुशल कैसे रह सकता है। रही बात मुनाफाखोरी की, तो इसकी कोई सीमा नहीं है। व्यापार व व्यापारियों में इसके बढ़ते चलन से सभी की जिंदगी की खुशहाली—बदहाली में जब-तब या हर समय बदलती रहती है।

जीवन को स्वस्थ-सकुशल व खुशहाल रहने के लिए उद्योग एवं व्यापार को अपनी नीति व

नियत दोनों को बदलना होगा। इनके अधिपतियों को समझना होगा कि धनपतियों की कतार में सबसे आगे निकलने की होड़ में शामिल होना उनका वास्तविक मकसद नहीं है। वे सभी मानव जीवन-प्रणाली में आवश्यकताओं व सुविधाओं के संचार के लिए हैं। इनके प्रत्येक रूप-स्वरूप व आयाम का समान महत्त्व है।

किसी को कमतर नहीं माना जा सकता। चाहे वह किसी ठेलिया में सामान रखकर गली-गली बेचने वाला हो या फिर कोई बड़ा दुकानदार—महत्त्व सभी का समान है। ऑनलाइन से सुविधाएँ घर-घर पहुँचाने वाले आधुनिक व्यवसायी हों या फिर किराने के सामान का कोई थोक व्यापारी; महत्त्व की दृष्टि से कोई कम नहीं है। इसी तरह से कोई लघु उद्योग का मालिक हो अथवा कोई बड़ा उद्योगपति—जीवन-प्रणाली के लिए सभी महत्त्वपूर्ण हैं।

इस क्रम में जितना महत्त्व इन सबका है, उतना ही महत्त्व इनके काम से जुड़े लोगों का भी है; फिर चाहे वे ट्रक वाले हों अथवा दुकानों-व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में छोटे-मोटे काम करने वाले। जिस तरह शरीर की प्रत्येक कोशिका का उतना ही महत्त्व है, जितना रक्त संचरण अथवा श्वसन तंत्र का। किसी भी कोशिका के बीमार या अक्षम होने से सब कुछ पीड़ाप्रदायक हो जाता है। समय-समय पर होने वाली हड़ताल या असहयोग के दिनों में यह सच यदा-कदा उजागर होता रहता है।

इनकार इनमें से किसी की उपयोगिता से नहीं है, इनकार इनमें घुस आई अवांछनीयताओं का है। अस्वीकार उस सड़ांध और दुर्गंध को किया जा रहा है, जो न जाने कैसे उद्योग व व्यापार में घुस पड़ी है। समय रहते इसको निकाल फेंकना होगा, अन्यथा समय ही इसको निकाल फेंकेगा। अगला समय वर्तमान परिस्थितियों के प्रतिकूल होने वाला है। मिलावटखोरी, जमाखोरी या मुनाफाखोरी को भविष्य में कोई भी स्थान मिलने वाला नहीं है। समझदार लोग न तो इन्हें स्वीकार करते हैं, न सम्मान देते हैं। आने वाले दिनों में लोगों द्वारा ऐसी अवांछनीयताओं व कुटिल-कुचक्रों का इनकार व अस्वीकार, दोनों भारी मात्रा में बढ़ेंगे। परिस्थितियों में इतना भारी उलट-फेर होगा कि किसी को परिवर्तन के अलावा कोई मार्ग न मिलेगा।

आज की जो स्थितियाँ हैं, जो हमारे आस-पास हो रहा है, उसे अनुभव करने पर यह सवाल साझा करना सहज है कि यह सारा परिवर्तन कौन करेगा? तो इस सवाल के उत्तर में अभी सबको यही समझाया जा सकता है कि यह सारा काम जनता में आई जागरूकता स्वयं कर लेगी। अपने समाज में जनता-जनार्दन कहने का चलन है। अगले दिनों यह उक्ति न केवल सार्थक होगी, बल्कि अपनी सही सामर्थ्य का प्रदर्शन भी करेगी।

यदि देश व दुनिया को सँवरना है तो उद्योग व व्यापार को सबसे पहले सुधरना होगा। परिस्थिति में परिवर्तन आवश्यक है। इसके लिए उद्योग-व्यापार के अधिपतियों एवं इससे जुड़े लोगों की मनःस्थिति भी बदलना जरूरी है। धन कमाया जाना चाहिए, पर साथ में जन-जीवन भी स्वस्थ, सकुशल और खुशहाल होना चाहिए।

संसार में, समाज में जीवन और जगत् में अनेकों शक्तियों की प्रबलता देखी-सुनी जाती है। इनमें से प्रायः धनशक्ति के गुणगान सुने-सुनाए जाते हैं। कुछ अंशों में यह सही भी है; लेकिन यह

सत्य का एक लघु अंश ही है, संपूर्ण सच नहीं है। इस धनशक्ति से बड़ी जनशक्ति है, जो सरकारें बदलती है, शासन और विधान बदलती है। जब इसमें उफान और तूफान आते हैं, तो इसके सामने कोई ठहर नहीं पाता।

आने वाले समय में यही चरितार्थ होने वाला है। उद्योग-व्यापार में घुसपैठ किए बैठी दुरभिसंधियों को जनशक्ति ही सुधारेगी। वही अवांछनीयता से 'अ' हटाकर वांछनीयता में बदलेगी। गरमी के दिनों में जब तपन तीव्र होती है, धरती सूखने-दरकने लगती है, घास व तिनके भी कहीं दिखाई नहीं पड़ते—तब उस समय किसे भरोसा हो पाता है कि आने वाले कुछ ही महीनों में यह तपन की तीव्रता रहने वाली नहीं है। शीघ्र ही इस ऊष्णता को वर्षा की फुहारें शीतलता में बदलने वाली हैं। सूखती-दरकती धरती जल्दी ही भीगकर अपना भाग्य बदलने वाली है। आने वाला समय इस पर हरियाली की हरी-हरी चादर बिछाने वाला है।

उस समय स्वच्छ आसमान और ऊपर के दहकते-धधकते सूरज को देखकर किसी को भरोसा नहीं होता है। बुद्धि के बौद्धिक समीकरण, तर्क के तीर, बहक-भटककर थक जाते हैं। अनुमान भी नहीं हो पाता है कि अभी कुछ ही महीनों बाद आकाश में घटा-टोप घटाएँ छाएँगी। मेघों की घन-गरज होगी। कड़कती विद्युत छटा छिटकेगी और फिर होने वाली मूसलाधार बारिश से जल प्लावन के दृश्य उभरेंगे। यह परिवर्तन मानवीय सामर्थ्य से नहीं, प्राकृतिक सामर्थ्य से ही संभव बन पड़ता है। जब एक साथ एक नहीं अनेक परिवर्तन घटित होते हैं और व्यापक परिक्षेत्र में अपना प्रभाव-प्रदर्शित करते हैं, तो इनकी प्रेरक प्रकृति ही होती, है। वही परिवर्तनों के बीज बोती है, उसी के द्वारा इनके अंकुरण के साधन जुटाए जाते हैं। वही इन्हें प्रभावी प्रभाव प्रदान करती है।

उद्योग व व्यापार क्षेत्र में भावी-भविष्य में जो परिवर्तन होंगे, उनका प्रकट व प्रत्यक्ष कारण तो जनशक्ति होगी लेकिन इसके पीछे अप्रकट एवं परोक्ष कारण स्वयं प्रकृति ही बनेगी। प्रकृति के प्रत्येक आयाम में अवतरित होने वाला प्रकाश ही जनशक्ति को इसके लिए प्रेरित, प्रवर्तित एवं परिवर्तित करेगा। युग-परिवर्तन के उद्देश्य के लिए यह आवश्यक है और अनिवार्य भी।

उद्योग व व्यापार—जीवन-प्रणाली की प्रत्येक आवश्यकता व सुविधा के लिए संचार व्यवस्था

उद्योग व व्यापार क्षेत्र में भावी-भविष्य में जो परिवर्तन होंगे, उनका प्रकट व प्रत्यक्ष कारण तो जनशक्ति होगी, लेकिन इसके पीछे अप्रकट एवं परोक्ष कारण स्वयं प्रकृति ही बनेगी। प्रकृति के प्रत्येक आयाम में अवतरित होने वाला प्रकाश ही जनशक्ति को इसके लिए प्रेरित, प्रवर्तित एवं परिवर्तित करेगा।

है। इसमें आ गई कमियों-खामियों को हटाए बिना किसी भी तरह की सकारात्मकता या सार्थकता संभव नहीं है। इसलिए इसे परिवर्तित होना ही होगा। समय का प्रवाह ही इस जीवनदायी प्रवाह को बदलेगा। साथ ही उद्योगपति एवं व्यापारी भी अपना मानवधर्म-जीवनधर्म समझेंगे। उन्हें यह सच समझ में आने लगेगा कि जन-जीवन को स्वस्थ, सकुशल एवं खुशहाल किए बिना उन सबके स्वयं का स्वस्थ, सकुशल एवं खुशहाल रहना भी संभव न रह पाएगा। तब उनकी इस सकारात्मक समझ को सद्गुण व समृद्धि के परस्पर सहयोग के रूप में देखा जा सकेगा। ❑

अपनों से अपनी बात

अपने आप को पहचानें

हमारी गुरुसत्ता ने अपने कर्म, आचरण, व्यवहार की उत्कृष्टता को, व्यक्तित्व की प्रामाणिकता को जीवन में सर्वोपरि स्थान दिया है। इसके लिए तप, साधना, संयम, सेवा, त्याग-समर्पण जैसी विशेषताओं का हममें होना आवश्यक है।

आज इस अनुपम-अद्वितीय विराट संगठन 'गायत्री परिवार' के अंग-अवयव बनकर जो करोड़ों की संख्या में पीत वस्त्रधारी गायत्री परिजन लोकसेवा करते दिखाई देते हैं, गुरु-कार्य के लिए जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी जुटे हुए हैं—इन सभी ने उक्त विशेषताओं के आधार पर ही स्वयं को इस महान परिवार का हिस्सा बनाने की पात्रता अर्जित की हुई है।

प्रत्येक गायत्री परिजन बाह्य रूप में मान-प्रतिष्ठा, धन, पद आदि के स्तर पर भले ही किसी को छोटा-बड़ा दिखाई पड़े, परंतु मिशन की दृष्टि से सभी समान हैं और उत्कृष्टता और प्रामाणिकता के मानदंड पर सभी समान रूप से खरे साबित होते आए हैं।

तप-अनुशासन, सादगी-संयम, सेवा-त्याग, सहिष्णुता-समर्पण के स्तर पर एक-से बढ़कर-एक अपनी गुरुभक्ति को दरसाते-दिखते रहे हैं। यदि हरेक का जीवन वृत्त कोई लिखने बैठे तो शायद कागज, कलम, स्याही कम पड़ जाए एवं ये धरती छोटी पड़ जाए।

ऐसे करोड़ों संस्कारित-प्रज्ञावान लोगों का गायत्री परिवार जैसा अद्भुत संगठन बनाकर इस धरा-धाम को धन्य बनाने वाली अवतारी चेतना हमारी गुरुसत्ता ही हो सकती है। बाहर से देखने पर लोगों में इस संगठन की विराटता-व्यापकता को देखकर तनिक भ्रम-भ्रांति की भावना-धारणा प्रकट हो सकती है। दूर से देखने-समझने की कोशिश करने वाले गलतफहमी का शिकार हो सकते हैं।

ऐसों के मन की बातों में मिशन और इसके परिजनों की उत्कृष्टता और प्रामाणिकता के प्रति प्रश्नचिह्न उठ सकता है, परंतु जब वे भी इसकी छाँह में आएँगे, गायत्री परिवार के भीतर प्रवेश करेंगे, तब उन्हें भी हम परिजनों की सत्यता का मर्म पता चल जाएगा।

उन्हें पता चलेगा कि हम सबका संबंध जन्म-जन्मांतरों से जुड़ा है। सभी में पूर्वजन्मों के असाधारण दिव्य संस्कार हैं, सभी में अपार शक्ति-सामर्थ्य और पुरुषार्थ की क्षमता-योग्यता भरी पड़ी हैं।

यह भी जान पाएँगे कि सब परिजन आद्यशक्ति गायत्री से सद्ज्ञान, सच्चिंतन, विवेक-प्रज्ञा की तीव्रता के लिए अहर्निश उपासना करते हैं। इनमें सविता शक्ति की साधना से प्रखरता, ओजस्विता, सक्रियता और प्रचंडता का प्रस्फुटन होता है और सावित्री तत्त्व की आराधना इनमें भक्ति, प्रेम, समर्पण, त्याग, सेवा-सद्गुण जैसे उच्चस्तरीय मूल्यों को प्रतिष्ठापित कर इनके कार्य-पुरुषार्थ को निस्स्वार्थ, लोकोपकारी और पवित्र बनाए हुए है।

गायत्री, सविता और सावित्री अर्थात परमपिता परमात्मा की सत्ता, शक्ति और स्वरूप का निरंतर सान्निध्य ही इन गायत्री परिजनों की पात्रता-प्रामाणिकता का मूलस्रोत है। नियमित उपासना से गायत्री को पुष्ट करते हैं, साधना से सविता तेज का संदोहन करते हैं और आराधनारूपी लोकसेवा से सावित्रीरूपी परमात्मा के दृश्य स्वरूप इस संसार

की निस्स्वार्थ सेवा करते हैं। इस परिवार का, ऐसे विराट मिशन का हिस्सा होना प्रत्येक के लिए परम सौभाग्य और धन्यता का विषय है।

हमारे प्रत्येक परिजन इस गर्व की सतत अनुभूति करते हुए ही क्षेत्र-समाज में निरंतर गुरु कार्यों का संपादन करते रहे हैं। सभी का यही ध्येय एवं प्रयास होता है कि इष्ट कार्य को कितने ज्यादा समर्पण और त्याग से किया जाए—ज्यादा-से-ज्यादा किया जाए।

मिशन की प्रत्येक सौंपी गई जिम्मेदारियों में अग्रिम पंक्ति में हमारा स्थान और नाम हो। भला ऐसी ललक और परमार्थ के प्रति उत्साह लिए लोगों का इतना बड़ा संग-समुदाय गायत्री परिवार के अतिरिक्त दुनिया में और कहाँ देखा जा सकता है? कहीं नहीं दिखाई पड़ता।

यह असामान्य, असाधारण और आध्यात्मिक संगठन इस युग की सर्वोपरि अमूल्य कृति है और इसको बनाने वाले हमारे पूज्य गुरुदेव और वंदनीया माताजी ही इस अमूल्य कृति के सर्जक, पोषक और संवाहक हैं। उक्त चर्चा करने के पीछे की भावना यह है कि हम सभी परिजन अपनी अद्वितीय गरिमा और गौरव की अनुभूति को एक पल के लिए भी तिरोहित न होने दें।

यह समय अत्यंत विशेष है और सबके समक्ष महती जिम्मेदारी व कर्त्तव्यनिष्ठा के साथ प्रस्तुत हुआ है। दुनिया हमारी प्रामाणिकता और उत्कृष्टता के स्तर पर आँख गड़ाए बैठी है, यह आस लगाए बैठी है कि जो कुछ भी दिशा-प्रेरणा उज्ज्वल भविष्य के लिए, मानवता के कल्याण के लिए प्राप्त होती है, वह इसी संगठन से हो सकता है।

ऐसे अब हमें हर स्तर पर कमर कस लेने की आवश्यकता है। आत्मगौरव-आत्मगरिमा को कोई हीन भावना, स्वार्थ-अहंता ओझल न कर दे—सजगतापूर्वक ध्यान रखना है। प्रामाणिकता के मानदंड कर्म, आचरण, खान-पान, वेशभूषा, व्यवहार में कहीं कमजोर न दिखाई दें, इसका भरपूर प्रयास करना है।

गुरुसत्ता के साथ जुड़ने और उनके महासंकल्प के साथ भागीदारी करने का इससे बड़ा अवसर नहीं मिलने वाला है। इस अवसर पर अपने भीतर के श्रद्धा, विश्वास और प्रेरणाओं को जगाने वाली गुरुदेव की अमृतवाणी आपसे साझा करने का मन है।

पूज्य गुरुदेव की वाणी है—'अपने आप को पहचान लीजिए कि आप सामान्य आदमी हैं नहीं, आप असामान्य हैं और आप सामान्य कर्मों के लिए पैदा नहीं हुए हैं, असामान्य काम के लिए पैदा हुए हैं। आप नौकरी करने, पढ़ने के लिए मात्र पैदा नहीं हुए हैं, हमने भी पढ़ा है, स्कूल के अलावा पढ़ा है।

नौकरी करते हैं, नौकरी भी नहीं करते पर हम नफे में हैं। नौकरी करते तो क्या हो जाता, पढ़-लिखकर बीए हो जाते तो क्या हो जाता, लेकिन जो हमने किया है, जो हमको मिला है, वो बहुत फायदे का मिला है और तुम भी जिस लायक हो, जो तुम्हारी वास्तविक योग्यता है—जन्म-जन्मांतरों की संग्रह की हुई बड़ी योग्यता थी।

इसीलिए हमारे गुरु ने स्वयं हमारे घर आकर ये कहा था कि जिस काम में आपके घरवाले आपको लगाना चाहते हैं, वह आपके लिए ठीक नहीं है, हम जो कहते हैं सो काम कर। मैंने वही काम किया और उनका कहना न माना होता, घरवालों का कहना माना होता तो, तो फिर अपने आप का ज्ञान ही नहीं होता।

यह नहीं मालूम होता कि पूर्वजन्मों की संचित संपदा कुछ और भी है क्या हमारे पास। उन्होंने दिखाया तो मालूम पड़ा कि हमारा पूर्वजन्मों का कुछ संकलन है, पूर्वजन्मों की कोई संपदा हमारे पास है और हम सामर्थ्यवान व्यक्ति हैं। सामर्थ्यवान

व्यक्ति हैं तो हम बड़े काम कर सकते हैं और बड़े काम करने चाहिए। आपसे भी मैं ठीक वही बात कह रहा हूँ। जो पुरानी घटना मेरे साथ बीती है, उन्हीं बातों को कह रहा हूँ।

मैं कोई नई बात नहीं कह रहा हूँ और आपसे यह कह रहा हूँ कि आप हमारा कहना मानें तो आप नफे में रहेंगे जैसे कि हम नफे में रहे। जिस तरह से हमारे पास पुराने जन्मों के संस्कार थे और उन संस्कारों के बल पर सफलता-पर-सफलता मिलती चली गई।

आप यदि एक कदम उठाएँगे इसी राह पर तो आपको भी सफलता-पर-सफलता मिलती चली जाएगी। आपको यह कभी नहीं कहना पड़ेगा कि आप बड़े घाटे में रहे। आप बड़े सामर्थ्यवान हैं, लेकिन सामर्थ्यवान होते हुए भी एक बड़े अचंभे की बात है कि आप अपने आप को पहचान नहीं पा रहे हैं।

सोया हुआ आदमी मरे हुए के बराबर हो जाता है। चाहे गाली दो उसको या कुछ भी। न उसको अपने शरीर का पता है, न कपड़ों का पता है कि कैसे उघाड़ा पड़ा है कि घर में चोरी हो रही है कि क्या हो रहा है। घर में सोया हुआ है। आप सो गए मालूम पड़ता है, इसलिए मुझे आपको जगाना है। जगाने के लिए मैं प्रार्थना कर रहा हूँ आपसे, कि आप अपने आप को जगा लीजिए।

सोई हुई स्थिति में रहेंगे तो बड़ी खराब बात हो जाएगी और इसी तरह से आप इस खुमारी में, जिस खुमारी में अभी हैं, इसी स्थिति में बने रहेंगे हमेशा, तो आप विश्वास रखिए कि आप एक ऐसा मौका गँवा देंगे, जैसा कि मौका कभी नहीं आने वाला, कभी नहीं आएगा। ऐसा योग, ऐसा मौका—यह मानकर चलिए कि यह एक अभूतपूर्व मौका है।

ऐसा मौका है कि जिसमें दुनिया का भाग्य बिगड़ सकता है या बन सकता है। हम सब मिल कर काम करें तो दुनिया का भाग्य बना भी सकते हैं और हम लोग सब मिलकर लापरवाही करें, अपने-अपने स्वार्थों में लगे रहें, अपने-अपने मतलब की बात सोचते रहें तो हम दुनिया के साथ में विश्वासघात भी कर सकते हैं। एक बड़ा इस तरह का मौका है, इसमें एक चौराहे पर खड़े हैं। एक जीवन का चौराहा है, एक मरण का चौराहा है। मरण का चौराहा क्या है? आपको कितनी बार बता चुके हैं।

कितनी भविष्यवाणियाँ सुना चुके हैं? कि यदि आप थोड़ी-सी हिम्मत दिखाएँ, बस, इतनी हिम्मत दिखाएँ, जितनी रीछ-बंदरों ने दिखाई थी। आप तो उनसे बड़े हैं। ऐसे मौके पर आपको छोटे लाभों का विचार नहीं करना चाहिए। आपको बड़े लाभों का विचार करना चाहिए। आपके पास बहुत शक्ति है और इस शक्ति का ठीक इस्तेमाल इस समय करें और आप सोएँ नहीं।

यह न तो विश्वास का समय है कि आप अपने आप को भूल जाएँ कि हम कौन हैं, और न यह अविश्वास का समय है कि आप यह देखें कि सारी दुनिया का भाग्य लिखा जा रहा है। यह ऐसा समय, जैसे भारत का संविधान लिखा गया था, इसी तरह से मानव जाति का भविष्य लिखा जा रहा है और उस लिखे हुए भाग्य-भविष्य में आपका कुछ योगदान होना चाहिए कि नहीं होना चाहिए। मेरा ख्याल है कि आपका योगदान जरूर होना चाहिए।

पूज्यवर का यह प्रेरक संदेश शांतिकुंज ऑफिशियल यू-ट्यूब चैनल पर भी वीडियो संदेश के रूप 'अपने आप को पहचानें' शीर्षक के नाम से मौजूद है। प्रत्येक परिजन को अपने आत्मगौरव की अनुभूति और पात्रता एवं शक्ति-सामर्थ्य की असीमता का भान कराने वाले इन आप्तवचनों का चिंतन-मनन अवश्य करना चाहिए। ❑

मानवता का कल्याण हो गया

प्यार तुम्हारा पाकर माता, जग में प्रज्ञा अभियान हो गया।
कृपा तुम्हारी बरसी इतनी, मानवता का कल्याण हो गया॥

क्रंदन-हाहाकार मचा था, तड़प रही थी धरती सारी।
आतंकी हमले होते थे, फैल रही थी बीमारी॥
कला सिखाई जीवन जीने की, जीने का सद्ज्ञान हो गया।
कृपा तुम्हारी बरसी इतनी, मानवता का कल्याण हो गया॥

विचारक्रांति-अभियान चलाया, उर का देवत्व बढ़ाने को।
सुलभ हुईं साधन-सामग्री, मानव को देव बनाने को॥
शिक्षा और प्रशिक्षण से, प्रज्ञा युग गतिमान हो गया।
कृपा तुम्हारी इतनी बरसी, मानवता का कल्याण हो गया॥

सकल साधना सफल हो रही, माता कृपा तुम्हारी है।
महाकाल और महाशक्ति का, सारा जग आभारी है॥
दुर्गा शक्ति के संरक्षण में, सफल सृजन अभियान हो गया।
कृपा तुम्हारी इतनी बरसी, मानवता का कल्याण हो गया॥

अखण्ड ज्योति और सद्साहित्य से, पावन प्रकाश हम पाते हैं।
अंतर्मन पुलकित हो जाता, सादर शीश झुकाते हैं॥
देवी भगवती सफल हुआ तप, जग में नया विहान हो गया।
कृपा तुम्हारी इतनी बरसी, मानवता का कल्याण हो गया॥

—विष्णु शर्मा 'कुमार'

युगव्यास वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य
के
समग्र वाङ्मय का क्रमिक परिचय

खंड-11
गायत्री-साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार

किसी भी सुपात्र द्वारा गायत्री साधना संपन्न किए जाने पर गायत्री-उसे वह सब कुछ दे देती है, जो सद्बुद्धि पाने पर किसी को भी अभीष्ट होता है। गायत्री-साधना एक सूक्ष्म विज्ञान-सम्मत प्रणाली है। अपने जीवन में गायत्री-साधना के संबंध में जानें-

- गायत्री की दिव्य सिद्धियाँ।
- गायत्री द्वारा भौतिक सफलताएँ।
- गायत्री से विपत्ति-निवारण।
- गायत्री-साधना से समृद्धि।
- गायत्री मंत्र की अनुभूतियाँ।
- गायत्री-साधना से आत्मोत्कर्ष।

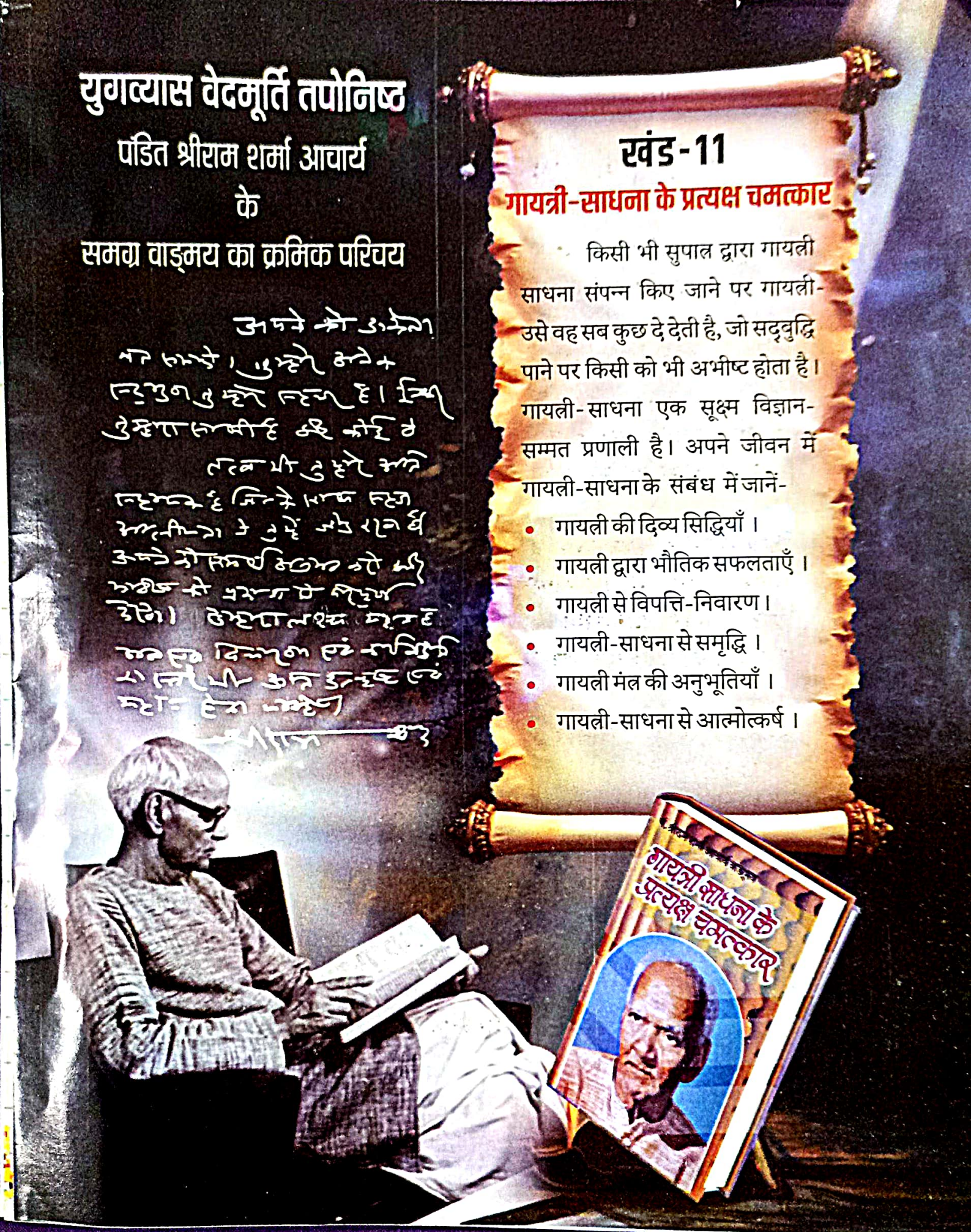

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01-10-2024
Regd. No. Mathura - 025/2024-2026
Licensed to Post without Prepayment
No. : Agra/WPP - 08/2024-2026

पूज्य गुरुदेव की साधना शताब्दी एवं आदरणीया माताजी तथा अखंड दीपक के संयुक्त जन्मशताब्दी समारोह की तैयारियों के अंतर्गत, श्री चिन्मय पंड्या एवं श्रीमती शेफाली पंड्या ने पवित्र ज्योति-कलश लेकर अमेरिका के अनेक राज्यों का भ्रमण किया। वहाँ पर ज्योति-कलश का श्रद्धा एवं पारंपरिक रीति-रिवाजों के साथ भव्य स्वागत किया गया। परिजनों को सन् 2026 में आयोजित होने वाले इस शताब्दी महोत्सव में सक्रिय रूप से सहभागी बनने के लिए आमंत्रित किया गया।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक–मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक–डॉ. प्रणव पण्ड्या।

दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039

ई-मेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org